

आध्यात्मिक रहस्य के रहस्य

३२ वैशिवक आध्यात्मिक भावनायें

भावना-द्वार्थिंशतिका

-आचार्य अमितगति



प्रस्तुत कृति की पाण्डूलिपि का अध्यापन कराते हुए आचार्य कनकनन्दी, अध्ययन करते हुए स्वसंघस्थ साधु, ब्रह्मचारी, प्रो. डॉ. कछारा, प्रो. प्रभात कुमार,

प्रो. सुशीलचन्द्र सपलीक तथा छोटूलाल आदि।

(आगमनिष्ठ-गुरुभक्त-सांस्कृतिक ग्राम-रामगढ़-२०१०)

भावार्थ एवं प्राप्त शिक्षायें
द्वारा - आचार्य कनकनन्दी



प्रो. डॉ. सोहनराज तातेड न्यू एज इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी, यू.एस.ए. के कोलकता केन्द्र पर विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार से डी. लिट की उपाधि ग्रहण करते हुए।
दि. 21-2-10 तातेड को इस वि. वि. का संरक्षक प्रोफेसर भी बनाया गया।



दीपेश जैन (चीतरी) को गुरुभक्त संस्थान-कार्यकर्ता रूप में प्रशस्ति पत्र देते हुए आचार्य कनकनन्दी (रामगढ़-2010)

आध्यात्मिक रहस्य के रहस्य 32 वैष्णवेक आध्यात्मिक भावनाएँ भावना-द्वात्रिंशतिका

- आचार्य अमितगति

आवार्थ छुवं प्राप्त शिक्षाएँ
द्वाषा- आचार्य कनकनन्दी

आध्यात्मिक दृष्ट्य के दृष्ट्य

32 वैश्विक आध्यात्मिक आवनाएँ

भावना-द्वार्तिका -आचार्य अमितगति

❖ पुण्य दर्शन ❖

विश्व धर्म सभा, मेलबोर्न में आचार्य श्री कनकनन्दी जी के शिष्य डॉ. नारायणलाल कछारा का “जैनकर्म-सिद्धान्त एवं विश्व शान्ति” विषय पर उद्बोधन एवं प्रतिभागी; उपकुलपति प्रो. डॉ. सोहनराज तातेडे के प्रयास से 11 प्रदेशों के 27 विश्वविद्यालयों में आचार्य कनकनन्दी जी साहित्य कक्ष की स्थापना तथा शोध कार्य; एवं 32 वाँ शिविर (रामगढ़-2009), विदेश की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था ‘पीसनेक्स्ट’ में आचार्य श्री कनकनन्दी के सदस्य (1466) बनने के उपलक्ष्य में-----

ग्रन्थाङ्क-188

प्रतियाँ-1000

प्रथम संस्करण-2010

मूल्य-51/-रु.

द्रव्यदाता- पिताश्री स्व. नेमीचन्द जी जौहरी तथा

मातुश्री स्व. शान्तिदेवी की पुण्यस्मृति में (अमेरिका)

प्राप्ति स्थान:- धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, द्वारा-श्री छोटूलाल चितौड़ा चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर आयडे, आयडे बस-स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001

सम्पर्क सूत्र - डॉ. नारायणलाल जी कछारा (सचिव)

55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.) - 313001

फोन नं.(0294) 2491422, मो.- 9214460622

E-mail: nlkachhara@yahoo.com

-आचार्य श्री के साहित्य निम्न वेबसाइट में देखें-
www.acharyakanaknandi.org
[2. www.jainworld.com](http://www.jainworld.com)

3. E-mail: bhupesh.icpl@yahoo.co.in (Peace Next)

4. Idjo-org (श्री नरेन्द्र कुमार जैन, अमेरिका)

- प्रस्तुत कृति का संक्षिप्त परिचय-

(आचार्य अमितगति कृत-भावना द्वार्तिका)

प्रस्तुत 32 श्लोक वाली आध्यात्मिक कृति अनुपम, अद्वितीय है। इसका प्रतिपाद्य विषय सम्पूर्ण जाति-पंथ-मत-सम्प्रदाय-परम्परा-रीति-रिवाज-इतिहास-पुराण-नाम-सन्त-ग्रन्थ-नीति-नियम-संविधान-कानून-राष्ट्र-अन्तर्राष्ट्र-पृथ्वी-मानव-विज्ञान-ज्यक्ति-मनोविज्ञान-दर्शन-धर्म की संकीर्ण सीमाओं से परे है। इसमें जो कुछ वर्णन है वह सब आध्यात्मिक-सार्वभौम वैश्वीक है। इसका प्रमुख प्रतिपाद्य विषय आध्यात्मिक होने पर भी इसमें सूक्ष्म जीव से लेकर ब्रह्माण्ड के हर जीव की सुरक्षा, सम्वृद्धि, सुख, शान्ति को लिए भी है। क्योंकि जैसा कि अनन्त आकाश में सम्पूर्ण जीव, गृह, नगर, राष्ट्र, पृथ्वी, सौर-मण्डल, आकाशगंगा, गेलेकसी, अणु-परमाणु, ब्लैक-होल, डार्क मैटर, डार्क एनर्जी आदि समाहित है/गर्भित है/रहते हैं, वैसा ही आध्यात्म में सम्पूर्ण धर्म-पंथ-मत-सम्यता-संस्कृति-अहिंसा-शांति-सुख-पर्यावरण सुरक्षा-नियम-कानून-संविधान-विज्ञान-दर्शन गर्भित है परन्तु इन सबकी संकीर्ण/सीमित क्षेत्र में पूर्णतः आध्यात्म समावेश/गर्भित होना सम्भव नहीं है।

जैसा कि करोड़ में हजार, लाख गर्भित है; अनन्त में संख्यात-असंख्यात गर्भित है उसी प्रकार आत्मकल्याण में परकल्याण से लेकर विश्वकल्याण; शारीरिक-मानसिक-स्वास्थ्य/विकास से लेकर आत्मिक स्वास्थ्य/विकास गर्भित है। इसलिए भारत के प्राचीन अनेक सेठ, साहूकार, विद्वान-मन्त्री-सेनापति, राजा-महाराजा, सम्राट-चक्रवर्ती सम्पूर्ण सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-भोग-उपभोग को त्याग कर आध्यात्मिक साधना से स्वात्मोपलब्धि स्वरूप मोक्ष/निर्वाण को प्राप्त करते थे क्योंकि इस उपलब्धि के बाद और कोई उपलब्धि अवशेष नहीं रहती है, इस स्वतन्त्रता के बाद और कोई स्वतन्त्रता शेष नहीं रहती है, इस विकास के बाद और कोई अमरत्व-विकास बचता नहीं है, इस सुख-शान्ति-वैभव-सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-स्थायित्व-अमृत के बाद और कोई भी सुख-शान्ति-वैभव-सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-स्थायित्व-अमृत-अमरत्व-विकास आदि ही अवशेष नहीं रहता है; यथार्थ से कहें तो सम्भव ही नहीं है। यह केवल आध्यात्मिक साधना से ही सम्भव है अन्यथा लौकिक-बाह्य-धार्मिक-वैज्ञानिक-कानून-संविधान आदि की पढ़ाई, साधन, उपकरण आदि से सम्भव नहीं है।

अध्यात्म के विद्यार्थी

कनकनन्दी

दि.- 3-3-2010 (अपराह्न 5 बजे)

आचार्य अभिनन्दनसागर जी गुरुदेव का
आगम सेवक आ. कनकनन्दी के लिए-
शुभाशीर्वाद-शुभकामनाएँ

सागर के पानी को जैसे बादल देश-देशान्तरों में, वन-उपवनों में वर्षा करके हरे-भरे करते हैं उसी प्रकार आचार्य रत्न कनकनन्दी आगम-रूपी सागर के जल को अपनी लेखनी रूपी बादल के द्वारा भव्यों तक पहुँचाते हैं, इसलिए आशीर्वाद के पात्र हैं।

मैं आचार्य कनकनन्दी को बहुत वर्षों से जानता हूँ, 1996 में आचार्य कनकनन्दी के गुरु गणधराचार्य कुन्दुसागर जी द्वारा प्रेषित/प्रदत्त आचार्य पद का संरक्षक उदयपुर में मेरे द्वारा सम्पन्न हुआ। तब मैंने इनके ज्ञान, नप्रता, सरलता तथा मेरे प्रति इनकी भक्ति के कारण मैंने इन्हें आचार्य-रत्न पदवी से अलंकृत किया। इनके आगम ज्ञान एवं वैज्ञानिक विश्लेषण के कारण उन्हें मैं प्रवचन, अध्यापन के लिए कहता हूँ, जिसे वे मेरी आज्ञा को शिरोधार्य करके प्रवचन व उपस्थित सब साधु-साध्वियों को अध्यापन कराते हैं। इसके लिए वे आशीर्वाद के पात्र हैं।

आचार्य अभिनन्दनसागर

परतापुर (राज०)

दि. - 27-2-2010

- (1) सज्जनों के संकल्प कल्पवृक्षों के फलों के समान शीघ्र ही परिपक्व हो जाते हैं। (कालिदास)
- (2) जो व्यक्ति उच्च विचारों की सुखद संगति में रहते हैं वे कभी अकेले नहीं रहते हैं।

आध्यात्मिक-रहस्य

(आध्यात्मिक महापुरुषों की क्यों होती है अलौकिक प्रवृत्ति ?)

(महापुरुषों की असामाजिक प्रवृत्ति)

-आचार्य कनकनन्दी

देश-विदेशों के साहित्यों के अध्ययन एक अलौकिक-विचित्र-सुखद आश्चर्यकारी-अविश्वसनीय विषय स्पष्ट परिज्ञान होता है कि कुछ अतिविशिष्ट आध्यात्मिक महापुरुष की प्रकृति/भावना/प्रवृत्ति सामान्य लोगों से भिन्न होती है। जैसे तीर्थयर, गणधर, आचार्य, उपाध्याय, साधु, महात्मा बुद्ध, सुकरात, जड़भरत, रायचन्द, ईसा-मसीह आदि अनेक महापुरुष इसके उदाहरण हैं। जैन धर्म के सम्पूर्ण तीर्थयर (केवल भरत क्षेत्र में एक ही काल में 24 तीर्थकर) तो जन्मतः ही 3 ज्ञान के धारी के साथ-साथ क्षत्रिय राजकुमार से लेकर सप्राट-चक्रवर्ती थे, सत्ता-सम्पत्ति-सेना-प्रजा-प्रसिद्धि-रानियाँ-पुत्र-पुत्रियों से सम्पन्न थे, अनेक युद्ध किए, विजय प्राप्त किए तथापि वे केवल बाह्य सत्तादि त्याग नहीं किए अपितु वस्त्र का त्याग करके दिग्म्बर स्वरूप में सम्पूर्ण परिषह-उपसर्गों को समता-पूर्वक सहन करते हुए आध्यात्मिक साधना-ध्यान-पवित्रता के कारण मोक्ष प्राप्त किए। ऐसा ही गणधर से लेकर साधु तक लाखों की संख्या में हुए जिनमें से अधिकांश राजा-महाराजा, राजकुमार, सेनापति, मन्त्री से लेकर सेठ-साहूकार थे। उन्होंने भी यथायोग्य तीर्थकरों के जैसे आचरण किया। महात्मा बुद्ध राजकुमार थे। उन्होंने भी सन्यासी बनकर परिनिर्वाण के लिए साधना की। ऐसा ही यथायोग्य अन्य महापुरुषों के बारे में भी वर्णन पाया जाता है। मेरे मन में भी बाल्यकाल (9-10 वर्ष की आयु) से सैकड़ों-हजारों जिज्ञासाओं में से अनेक जिज्ञासाएँ यथा-आत्मा-परमात्मा, सत्य-असत्य, आध्यात्मिक महापुरुषों के विचार-व्यवहार सम्बन्धी भी हैं। जब मैंने बाल्यकाल से ही इनके बारे में सुना तथा पुराण, इतिहास, धार्मिक-आध्यात्मिक ग्रन्थों (दि०, श्वे०जैन ग्रन्थों, वैदिक ग्रन्थों विशेषतः 108 उपनिषद्, अष्टावक्र गीता, गीता आदि, बौद्ध ग्रन्थों-त्रिपिटक, जातक

कथा, धर्मपद आदि) में पढ़ा तब से मुझे यह जिज्ञासा होनी प्रारम्भ हो गई कि जब वे इतने योग्य-समर्थ-वैभवशाली-बलवान् थे तो वे स्वेच्छा से साधु क्यों बने ? साधु अवस्था में पशु-पक्षी, दुष्ट-दुर्जनों के द्वारा किये गये विभिन्न कष्टों को समतापूर्वक सहन क्यों किया ? जबकि साधु अवस्था में भी अधिकांश साधु शारीरिक बल तथा ऋद्धि शक्ति से सम्पन्न थे। वे चाहते तो कष्ट देने वालों को केवल शारीरिक बल से ही नहीं इसके बिना भी ऋद्धि शक्ति से दृष्टिपात, अभिशाप से भी दण्डित कर सकते थे, मार भी सकते थे। तथापि कष्ट देने वालों के प्रति भी उन्होंने केवल क्षमाधारण ही नहीं किया अपितु उन्हें शुभाशीर्वाद भी दिया, उनके साथ समतापूर्ण करुणामय व्यवहार किया। यह भी जिज्ञासा रही कि वे ख्याति, पूजा, प्रसिद्धि, अहंकार, ममकार, क्रोध, माया, मत्सर, काम-विकार, ईर्ष्या, द्वेष, संकीर्णता, भेद-भाव, परावलम्बन, भोग-उपभोग आदि से निर्लिपि क्यों रहे ? दूर क्यों रहे ? जबकि उनके भक्त-शिष्य-अनुयायी-प्रशंसक-पूजक-श्रोता-व्यवस्था करने वाले-दान देने वाले सामान्य लोगों से लेकर सेठ-साहूकार, राजा-महाराजा हजारों, लाखों की संख्या में थे। दीर्घ कालीन अध्ययन-अनुसन्धान-अनुभव से जो कुछ अनुभव हुआ, उसका कुछ दिग्दर्शन-निमोक्त है-

(1) **अनात्म स्वरूप-** उपर्युक्त समस्त विषय जो कर्मजनित हैं वे सब अनात्मा है, आत्मा से भिन्न है क्योंकि शुद्धात्मा का स्वरूप अमूर्तिक-चैतन्य-आनन्दघन स्वरूप-अविनाशी-पवित्र-निर्विकार-शान्त-समतामय है।

(2) **अशाश्वतिक-** उपर्युक्त समस्त विषय अशाश्वतिक हैं क्योंकि अनादि काल से अभी तक जिसने भी जन्म लिया है और उसने जो भी कुछ सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि आदि प्राप्त किया, वह व्यक्ति न अभी तक है न उसकी सत्तादि उसके साथ रही।

(3) **कर्म बन्ध कारक-** उपर्युक्त अनात्म भावों से कर्म का आस्र-बन्ध होता है। यह कर्म बन्ध ही आध्यात्म-परतन्त्रता, जन्म-मरण, शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक रोग/दुःखों के लिए कारण है।

(4) **अशान्तकारक-** अनात्म-अशाश्वतिक-कर्मबन्धकारक होने से इससे

कभी भी शान्ति मिलना सम्भव ही नहीं है। भले इससे हिंसानन्द, चौर्यानन्द, विषयानन्द, परिग्रहानन्द, मृषानन्द आदि विकृतानन्द/वैभाविक आनन्द हो जो व्याधी से स्व-पर दुःखदायी, विध्वंसकारी, अशान्तकारक है।

(5) **आत्मोद्धार-** अनादि अनन्त शाश्वतिक विश्व में अनन्त जीव चर्तुर्गती रूपी संसार में-84 लाख योनियों में अनन्त पञ्च परिवर्तनों में अनन्त जन्म-मरण-दुःखों को प्राप्त करते आ रहे हैं। इस अवधि में प्रत्येक जीव ने जो उपरोक्त सत्ता-सम्पत्ति आदि के लिए जितना श्रम किया, कष्ट उठाया, जन्म लिया-मरा, मारा और मारा गया उसका अनन्तवाँ भाग भी यदि समता-पवित्रता-क्षमादि माध्यम से आत्मकल्याण में लगाता है तो उसे मोक्ष मिल जाता।

(6) **विषमतापूर्ण संसार-** विश्व अनन्त है, जीव भी अनन्त है, उनके कर्म अनन्त हैं। कर्मानुसार भाव भी अनेक हैं और व्यवहार भी, भले शुद्ध नय से प्रत्येक जीव शुद्ध है परन्तु कर्म विचित्रता के कारण प्रत्येक जीव के भाव-व्यवहार भी विचित्र होते हैं। अतः सदा-सर्वदा-सर्वथा प्रत्येक शुद्ध-शान्त-पवित्र बन ही नहीं सकता है। अतएव संसार में दुष्ट-दुर्जन-पापी का सद्भाव रहेगा ही। इसलिए किसी भी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीव न केवल शत्रु हो सकते हैं, न ही मित्र, न ही भक्त, न ही अभक्त, इसी ही प्रकार अपना-पराया, सहयोगी-विरोधी, मानने वाला-नहीं मानने वाला, सुधरने वाला-नहीं सुनने-सुधरने वाला, सुखी-दुःखी, धनी-गरीब, निरोगी-रोगी, सबल-दुर्बल, ज्ञानी-अज्ञानी, आस्तिक-नास्तिक, सच्चा-झूठा, सरल-कुटिल आदि आदि। ऐसी परिस्थिति में सब के प्रति साम्यभाव-क्षमाभाव रखकर ही आत्मकल्याण सम्भव है।

आचार्य कुन्दकुन्द देव ने कहा भी है -

आदहिदं कादब्वं यदि चेत् परहिदं कादब्वं ।

आदहिदं परहिदादो आदहिदं सुदु कादब्वं ॥

णाणजीव णाणा कम्म णाणाविह हवे लद्धि ।

तेण वयण विवाद सग पर समयमि वज्जिदो ॥

अर्थात् आत्महित करना चाहिए। सम्भव हो तो परहित भी करना चाहिए। आत्महित-परहित में से आत्महित उत्तम प्रकार से/प्राथमिकता से करना चाहिए।

नाना जीव-नाना कर्म-नाना प्रकार की लब्धियाँ हैं। अतएव वचन-विवाद स्व-पर धर्मावलम्बियों से नहीं करना चाहिए। वचन विवाद भी राग-द्वेष, जय-पराजय, अहंकार-ममकार, लड़ाई-झगड़ा से लेकर हत्या-युद्ध तक का कारण बन सकता है। इसलिए तो 3 ज्ञान के धारी क्षायिक सम्यग्दृष्टि समस्त तीर्थकर जब समस्त वैभवादि को त्यागकर के साधु बनते हैं तब उन्हें चौथा मनःपर्यय ज्ञान के साथ-साथ 64 ऋद्धियाँ भी प्रगट हो जाती हैं तथापि वे तब तक उपदेश, धर्म प्रचार, दीक्षा-शिक्षा, संघ निर्माण आदि नहीं करते हैं जब तक कि उन्हें अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख, अनन्तवीर्य, वीतरागता, परम समता आदि प्रगट नहीं हो जाते हैं। वे कुछ दिनों से लेकर सैकड़ों वर्ष तक मौनपूर्वक एकान्त में रहकर समता पूर्वक निस्पृह होकर आत्मानुसन्धान, आत्मध्यान, आत्मपरिशोधन के माध्यम से अनन्तज्ञानादि प्राप्त करने के लिए सतत पुरुषार्थ करते हैं। केवलज्ञान होने के बाद देवगण स्वयं-स्वेच्छा से समवशरण की रचना करते हैं तथा उस समवशरण रूपी विश्व धर्म सभा में स्वेच्छा से धर्मश्रवण के लिए एकत्रित लाखों-करोड़ों मनुष्य, पशु, देवों को निस्पृह रूप से धर्मोपदेश देते हैं। यदि कोई अयोग्य है तो वह स्वयं उस धर्म सभा से निकल जाता था। तथापि तीर्थकर भगवान् उसके प्रति गलत-भाव-व्यवहार नहीं करते थे, न ही उसे स्व-उपदेश सुनने के लिए, मानने के लिए, आचरण करने के लिए बाध्य करते थे। इतना ही नहीं वे स्वयं की पूजा-अर्चना-प्रशंसा करने के लिए तथा अपनी मूर्ति-आराधना स्थली-संस्थादि निर्माण के लिए भी 9 कोटि (मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमत) से निस्पृह रहते थे। तथापि उनके निर्वाण के हजारों से लेकर करोड़ों-अरबों वर्षों तक, अभी तक उनके सिद्धान्त, अनुयायी, भक्त, मन्दिर, मूर्ति, पूजक, व्याख्याता, प्रचारक, प्रसारक हैं। ऐसे महान् आध्यात्मिक महापुरुषों के बारे में प्राचीन ग्रन्थों में निम्न प्रकार वर्णन पाया जाता है-

अनुसरतां पदमेतत्, करंविताचार नित्य-निरभिमुखा ।

एकांत विरति रूपा भवंति मुनीनामलौकिकी वृत्ति (16) । पु. सि.।

संसार-रहित वृत्ति अर्थात् अलौकिक आचार निर्ग्रन्थ मुनियों के होते हैं। इस आत्म तत्व पद का अनुसरण करता हुआ मुनि समस्त पापों से निवृत्त होकर

व्यवहार से मिला हुआ आचार से सदैव विमुख होकर अर्थात् पाप क्रिया से मुक्त व्यवहार से विरक्त होकर सदैव आलौकिक वृत्ति अर्थात् पाप रहित वृत्ति में विचरण करता है कहा भी है-

**एकाकी निष्ठृः शान्तः पाणि पात्रो दिग्म्बरः ।
कदाऽहं संभविष्यामि, कर्म निर्मूलनेक्षमः (1)**

भव्य मुमुक्ष विचार करता है कि मैं कब एकाकी, निष्ठृ, शान्त पाणिपात्री, दिग्म्बर होकर कर्म को नष्ट करने में सक्षम बनूँ। इसलिये समस्त पाप से विरक्ति मुनि की होती है न कि गृहस्थों की।

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम् ।

अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः (45)

पर देह धनादि पर ही है। उसे कभी भी आत्मा का, स्वयं का नहीं कर सकते हैं। इसलिये उसमें आत्मा का आरोपण करना दुःखों को निमंत्रण देना है। क्योंकि वे पर द्रव्य दुःखों के द्वारा हैं, दुःखों के निमित्त हैं। उसी प्रकार आत्मा आत्मा का ही है। उसे कभी भी देहादि रूप में परिणमन नहीं कर सकते हैं अथवा आत्मा देहादि का उपादान नहीं है। इसलिये आत्मा से सुख है; दुःख के निमित्त उसके अविषय हैं। इसके लिये ही तीर्थकरादि महात्मा आत्मा के निमित्त तपानुष्ठान रूपी उद्योग किया है।

प्रशान्तमसं ह्वेन योगिनं सुखमुत्तमम् ।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकलमषम् (27 गीता पृ. 76)

जिसका मन भलीभाँति शान्त हुआ है, जिसके विकार शांत हो गये हैं, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युञ्जत्रेवं सदात्मानं योगी विगतकलमषः ।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमशनुते ॥ (28)

आत्मा के साथ निरन्तर अनुसंधान करते हुए पाप रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्म प्राप्ति-रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

आध्यात्मिक रहस्य के रहस्य ~ 5

सामग्री विशेष विश्लेषिताखिलावरणमति इन्द्रियमशेषतो मुख्यम् (11)

(प्रमेयरत्नमाला पृ. 83)

सामग्री की विशेषता से दूर हो गये हैं समस्त आवरण जिसके ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

ऐश्वर्यमप्रतिहतं सहजो विरागस्तृप्तिर्निर्सर्गजिनिता वशितेन्द्रियेषु ।

आत्यान्तिकं सुखमनावरणा च शक्तिज्ञानं च सर्वविषयं भगवस्तथैव ॥

(पृ. 102)

तथा सन्यासियों के गुरु अवधूत के भी वचन उसके विषय में इस प्रकार हैं—
“हे भगवान् ! आपका ऐश्वर्य अप्रतिहत (अखण्ड) है, वैराग्य स्वाभाविक है, तृप्ति नैसर्गिक है, इन्द्रियों में वशिता है अर्थात् आप जितेन्द्रिय हैं, आपका सुख आत्यान्तिक अर्थात् चरम सीमा को प्राप्त है, शक्ति आवरण रहित है और सर्व विषयों का साक्षात् करने वाला ज्ञान भी आपका ही है । ”

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरमृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।

(पातञ्जली योगदर्शन 34 पृ. 174)

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेशरूप क्लेशों से शुभाशुभ कृतियों से जन्य पुण्य पाप रूप कर्मों से, पुण्य-पाप के फल-जाति, आयु तथा भोग प्रतिनिधि सुख-दुःख रूप विपाक से और सुख-दुःखात्मक भोग से जन्य विविध वासनाओं से अस्पृष्टः जीवरूप अन्य पुरुषों से विशिष्ट, चेतन ईश्वर है।

परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव ।

अपकुर्वन्यरस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत् (32)

हे भव्य ! अविद्या अर्थात् मोह के कारण जो तुमने देहादि पर द्रव्यों का उपकार किया है अभी विद्या के बल पर उस परोपकार को त्याग करके आत्मानुग्रह प्रधान बनो। शरीर आदि पर द्रव्य हैं, क्योंकि शरीर पुद्गल से निर्मित है। जिस प्रकार कि लोक में अज्ञान अवस्था में लोग दूसरों के उपकार करते हैं, परन्तु ज्ञान होने के बाद दूसरों का उपकार त्याग करके स्व का उपकार करते हैं।

अप्पा नई वेयरणी अप्पा मे कूडसामली ।

अप्पा कामदुहा धेणू अप्पा मे नन्दणं वणं (36)

“मेरी अपनी आत्मा ही वैतरणी नदी है, कूट-शालमलि वृक्ष है, कामदुधा-धेनु है और नन्दन वन है ।”

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य ।

अप्पा मित्तमित्तं च दुपदिठय-सुपदिठयो (37)

“आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्ता है और विकर्ता-भोक्ता है। सत् प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही शत्रु है ।”

सर्व विवर्तीतीर्ण, यदा स चैतन्यमचलमाप्नोति ।

भवति तदा कृतकृत्य, सम्यक् पुरुषार्थ सिद्धिमापनः (11)

(पु. सिद्ध्यु.)

जब वह आत्मा सर्व विकार रहित मोक्ष को प्राप्त कर लेता है तब वह सर्व कर्म रहित कृत-कृत्य अवस्था को प्राप्त कर लेता है। कैसी आत्मा उस सम्यक् पुरुषार्थ सिद्धि को प्राप्त करता है ? सम्यक् शुभ पुरुषार्थ से सिद्धि को प्राप्त करता है। कैसा चैतन्य समस्त विकारों से परिभ्रमण से उत्तीर्ण होता है ? समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव स्वरूप पंच परिवर्तन रूप अथवा देव, नारकी, तिर्यच, मनुष्य रूप गतियों से रहित समस्त क्लेश समूह से उत्तीर्ण मोक्ष को प्राप्त होता है। ऐसा वह कृतकृत्य शुद्ध चैतन्य होता है यह इसका भावार्थ है। चौरासी लक्ष विभाव, द्रव्य-व्यंजन-पर्याय, मति आदि विभाव गुण-पर्याय इनका आत्यन्तिक वियोग ही मोक्ष है। वही कृतकृत्यापना है। विभाव-गुण एवं विभाव-पर्यायों से युक्त कृतकृत्यापना नहीं है।

उपर्युक्त सूक्ष्म, गहन, अपरिचित, आध्यात्मिक, रहस्यपूर्ण सत्य-तथ्य को केवल आध्यात्मिक महात्मा (अन्तरात्मा) ही जानते हैं, मानते हैं, चाहते हैं, तथा प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ करते हैं। परन्तु ब्रह्माण्ड में इनकी संख्या अत्यन्त

जघन्य (अनन्त वां एक भाग) है। इसे स्थूल लौकिक दृष्टान्त के माध्यम से कहें तो इनकी मात्रा बिन्दु के समान है तो इनसे भिन्न अन्य जीवों की मात्रा सिन्धु के समान है। इसके साथ-साथ मानव जन्म भी अति दुर्लभता से मिलता है। उसमें भी हर मानव जन्म में आध्यात्मिक भावना नहीं होती है। अति दुर्लभता से निकट भव्यों को ही ऐसी भावना होती है। उनमें भी भावानुकूल आचरण/प्रवृत्ति (सर्व सन्यास रूपी साधुवृत्ति, साम्प्रवृत्ति, वीतरागता ध्यानादि) अति दुर्लभता से अतिविशिष्ट आध्यात्मिक महापुरुषों में होती है। अतएव उनकी भावना-प्रवृत्ति बहुसंख्यक मानवों से भिन्न होती है। इस दृष्टि से हर काल में हर क्षेत्र में ऐसे आध्यात्मिक पुरुष ही यथार्थ से अल्पसंख्यक होते हैं। ऐसी परिस्थिति में अल्पसंख्यकों की कौन सुने ? कौन माने ? कौन पहचाने ? कौन महत्व दे ? कौन अनुकरण करे ? अतः वे एकाकी, निष्ठृही, निर्मोही, निस्परिग्रही, मौनी होकर स्वयं में ही डुबे रहते हैं। इसलिये वे दूसरों की दृष्टि में असामाजिक, पलायनवादी, पगला, निकम्मा, पिछडा, मूर्ख, गूंगा, कठोर, भिखारी, लुच्चा, पापी आदि आदि है। इससे ही आध्यात्मिक महात्मा की रक्षा-सम्बृद्धि-साधना-सिद्धि होती है। अन्यथा मोही-स्वार्थी मानव उन्हें मोही-स्वार्थी बनाकर अपना मोह-स्वार्थ की सिद्धि में दुरुपयोग करेंगे। आध्यात्मिक महात्मा (आचार्य पूज्यपाद) के शब्दों में आध्यात्मिक महापुरुषों के चिन्तन, लक्ष्य निम्नोक्त हैं -

येनात्मनानुभूयेऽहमात्मनैवात्मनात्मनि ।

सोऽहं न तन्न सा नासौ नैको न दौ न वा बहुः (23) । समाधि तंत्र

अन्तरात्मा विचार करता है कि मैं शुद्ध चैतन्यमय निर्विकल्प आत्मा हूँ अपने आत्म स्वरूप का स्वयं अपने द्वारा आप ही अनुभव करता हूँ, न मैं जड़ शरीर हूँ, न मैं स्त्री, पुरुष, नपुंसक हूँ, न मैं एक हूँ, न अनेक हूँ। ये सब भेद कल्पना (विकल्प) शरीर के निमित्त से हुआ करता है, मैं उन समस्त संकल्प-विकल्पों से अतीत (रहित) हूँ।

यदभावे सुषुप्तोऽहं यद्भावे व्युत्थितः पुनः ।

अतीन्द्रियमनिर्देश्य तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् (24)

अन्तरात्मा विचार करता है जिस तरह संसारी जनता सूर्य के अभाव में अन्धकार हो जाने पर रात्रि में अपना सब कार्य छोड़ करके सो जाती है और सूर्य का उदय होने पर जागकर उठ बैठती है, अपना कार्य करने लगती है। इसी प्रकार मैं भी आत्म-ज्योति (आत्म अनुभव सम्यग्दर्शन) के अभाव में अंधकार में रहा, अपने आत्मा का कुछ कार्य करने सका। अब आत्मा का अनुभव होने पर याने-आत्म-ज्योति प्रदीप्त होने पर मैं जागा हूँ। मैं (मेरा आत्मा) इन बाहरी नेत्र आदि इन्द्रियों से नहीं जाना जाता, ये इन्द्रियाँ तो रूपी जड़ पदार्थ को जान सकती हैं, मेरा आत्मा तो चैतन्यमय अमूर्तिक है, वचन भी मेरा स्वरूप कह नहीं सकते वर्णोंकि वचन भी इन्द्रिय गोचर पदार्थ को कह सकते हैं। मैं तो अपने अनुभव से ही जाना जाता हूँ।

क्षीयन्ते�त्रेव रागाद्यास्तत्त्वतो मां प्रपश्यतः ।

बोधात्मानं ततः कश्चिन्म मे शत्रुं च प्रियः (25)

जब तक अपने ज्ञान दर्शन आदि महान वैभवशाली अपने आत्मा का अनुभव न किया जावे तब तक ही आत्मा अन्य जीवों के साथ, धन आदि जड़ पदार्थों के साथ राग-द्वेष आदि करके अपना कर्म बन्धन करता है। जब अपने शुद्ध आत्मा का अनुभव हो जावे तब-पर पदार्थों की ओर दृष्टि नहीं जाती इसलिये फिर किसी भी पदार्थ से न राग होता है, न द्वेष होता है। राग-द्वेष न होने से न जगत में कोई अपना शत्रु होता है और न कोई मित्र होता है, सब पदार्थों में समता भाव आ जाता है। ऐसा समता भाव के होते ही कर्मों का क्षय हो जाता है।

मामपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुं च प्रियः ।

मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुं च प्रियः (26)

शत्रुता और मित्रता न तो किसी अपरिचित (बिना जाने पहचाने) व्यक्ति के साथ होती है, और उस परिचित (जाने पहचाने) व्यक्ति से भी कोई शत्रुता या मित्रता नहीं करता जो कि किसी के साथ राग तथा द्वेष आदि विकार भाव नहीं करता। तदनुसार अन्तरात्मा विचार करता है कि यह जगत यानि जगत के सब चेतन-अचेतन पदार्थ मुझ शुद्ध बुद्ध आत्मा को जानते ही नहीं तो वह मेरे साथ शत्रुता या मित्रता क्यों करेंगे अर्थात् मेरे शुद्ध स्वरूप को बिना समझे कोई भी

मुझसे न राग करेगा और न कोई द्वेष (बैर) करेगा। तथा-च-जब यह जगत के पदार्थ मेरे निर्विकार आत्म-स्वभाव को जान लेंगे तब वे मेरा वीतराग स्वभाव समझकर न मुझसे मित्रता (प्रेम) करेंगे और न शत्रुता (द्वेष) करेंगे।

अचेतनमिदं दृश्यमदृश्यं चेतनं ततः ।

क रुप्यामि क तुष्यामि मध्यस्थोऽहं भवाम्यतः (46) समाधितंत्र

शरीर धनादि से बाहर से दिखाई देता है परन्तु अचेतन है उसमे कुछ समझ-बूझ नहीं है। जिसमें ज्ञान है वह चेतन आत्मा है परन्तु वह दिखाई नहीं देता, ऐसी दशा में सम्यक् दृष्टि आत्मा विचारता है कि यदि मैं शरीर से राग या द्वेष करूं तो उसका क्या लाभ ? वह तो ज्ञान शून्य अचेतन है और आत्मा दिखाई नहीं देता अतः उसमें राग द्वेष का विकार कैसा किया जावे। इस कारण मुझे राग करना या द्वेष करना छोड़कर मध्यस्थ रहना ठीक है।

मूढों से बोलना अयोग्य -

अज्ञापितं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा

मूढात्मानस्ततस्तेषां वृथा मे ज्ञापनश्रम (58) (समाधि तन्त्र)

अन्तरात्मा विचार करता है कि आत्मा की मिथ्या श्रद्धा मिथ्यात्व तथा अज्ञान का ऐसा बुरा प्रभाव है कि बहिरात्मा जीवों को शरीर आदि अन्य पदार्थों से भिन्न आत्मा का शुद्ध स्वरूप बिना समझाये तो मालूम होता ही नहीं परन्तु यदि उसको समझा जाय तो भी उसकी समझ में नहीं आता। चिर काल के मिथ्या संस्कार से वे शरीर को ही आत्मा समझे हुए हैं।

कथन एवं मौन से हानि-लाभ -

जनेभ्यो वाक ततः स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः ।

भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत् (72) समाधितंत्र

मुनि को मनुष्यों के संसर्ग से दूर रहकर सदा आत्म-ध्यान, आत्म चिन्तन या आत्म मनन करना चाहिये। क्योंकि मनुष्य आ करके अनेक प्रकार की सांसारिक बातें किया करते हैं, उन बातों को सुनकर मुनि के हृदय में राग द्वेष भावों का क्षोभ उत्पन्न होना स्वाभाविक बात है जब हृदय में किसी प्रकार का क्षोभ पैदा हो जावे

तब वह मुनि अपने शुद्ध आत्मा का चिन्तवन कैसे कर सकता है। इस कारण मुनि को जहां तक हो सके अन्य मनुष्यों के संसर्ग से दूर रहना चाहिए।

कठोर-कोमल स्वभाव के आध्यात्मिक पुरुष-

वज्ञादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि ।

लोकोत्तराणां चेतासि को हि विज्ञातुमर्हति ॥ (भवभूति)

साधु वज्ञ के समान कठोर होते हैं, चारित्र में बड़े कठोर होते हैं परन्तु किसी को कष्ट नहीं देते, दूसरों के लिये वे मृदु, कमल के समान कोमल होते हैं। दूसरों के दुःखों में दुःखी हो जाते हैं। उनका ध्यान रहता है कि उनके द्वारा एकेन्द्रिय जीव को भी कष्ट न पहुंचे।

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षयमन्नं, विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकमचपलं तत्पमस्दत्पमुर्वा ।

येषां निःसंगतार्गीकरणपरिणतस्वात्मसंतोषिणस्ते, धन्या संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराकर्मनिर्मूलयन्ति ॥

वे धन्य हैं जिनका हाथ ही पवित्र पात्र है, भ्रमर द्वारा प्राप्त शिक्षा ही अक्षय भोजन है, लम्बी-चौड़ी दसों दिशायें ही जिनका वस्त्र है, पृथ्वी ही जिनकी बड़ी शैय्या है, अंतःकरण के अनासक्ति योग से जो सदा संतुष्ट रहा करते हैं और दीनता के भावों को त्याग कर जन्म परम्परा से प्राप्त कर्मों का नाश करते हैं।

मुनि के अलौकिक आकिञ्चन्य धर्म -

ति-विहेण जो विवज्जदि चेयणमियरं च सव्वहा संगं ।

लोय-ववहार-विरदो णिगंथत्तं हवे तस्स (402)

जो लोक व्यवहार से विरक्त मुनि चेतन और अचेतन परिग्रह को मन वचन काय से सर्वथा छोड़ देता है उसके निर्ग्रहण अथवा आकिञ्चन्य धर्म होता है।

लोकव्यवहारविरत लोकानां व्यवहारः मानसम्मानदानपूजालाभादिलक्षणः तस्मात् विरतः विरक्तः निवृत्तः, अथवा संघयात्राप्रतिष्ठाप्रतिमाप्रासादोद्घरणादिपुण्यकरणादि रहितः ।

मुनि दान, सम्मान, पूजा, प्रतिष्ठा विवाह आदि लौकिक कर्मों से विरक्त

होते ही हैं, अतः पुत्र, स्त्री, मित्र, बन्धु-बान्धव आदि सचेतन परिग्रह तथा जमीन-जायदाद, सोना, चाँदी, मणि, मुक्ता आदि अचेतन परिग्रह को तो पहले से ही छोड़ देते हैं। किन्तु मुनि अवस्था में भी शिष्य संघ आदि सचेतन परिग्रह से और पीछी कमण्डलु आदि अचेतन परिग्रह से भी ममत्व नहीं करते। अथवा संघयात्रा, पंचकल्याणक आदि प्रतिष्ठा, प्रतिमा-प्रासाद (मूर्ति, मंदिर, धर्मशाला) आदि जीर्णोद्धार आदि पुण्य कार्य से भी होना इसी का नाम आकिञ्चन्य है। मेरा कुछ भी नहीं है, इस प्रकार के भाव को आकिञ्चन्य कहते हैं अर्थात् यह मेरा है इस प्रकार के संस्कार को दूर करने के लिये अपने शरीर वगैरह से भी ममत्व न रखना आकिञ्चन्य धर्म है। शरीर वगैरह से भी निर्ममत्व होने से मोक्षपद की प्राप्ति होती है।

धैर्यस्य पिता क्षमाश्च जननी शान्तिश्चिर गृहिणी ।
सत्यं सुनुरुयं दया च भग्नि भ्रातः मन संयमः ॥
शश्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं ।
ये ते यस्य कुटुंबिनो वद सखे कस्मात् भीतो योगिनः ॥

(रत्नत्रय भूषण)

हे रानी ! जिनके विशाल परिवार में इनका पिता धैर्य, माता क्षमा, दीर्घकालीन शान्ति पत्नि, सत्य पुत्र, दया बहिन, मन संयम भाई, पलंग भूमितल, दिशा वस्त्र, ज्ञानामृत भोजन, रत्नत्रय आभूषण हैं। ऐसा विशाल परिवार जिनके हैं ऐसे साधु को किससे डर है? अर्थात् किसी से नहीं है।

ऋषभदेव की दीक्षा-

ऋषभदेवजी (जैन धर्मानुसार प्रथम तीर्थकर) के सौ पुत्रों में भरत (जैन धर्मानुसार प्रथम चक्रवर्ती) सबसे बड़े पुत्र थे। वे भगवान् के परम भक्त और भगवद्भक्तों के परायण थे। ऋषभदेवजी ने पृथ्वी का पालन करने के लिये उन्हें राजगद्दी पर बैठा दिया और स्वयं उपशमशील निवृत्तिपरायण महामुनियों के भक्ति, ज्ञान और वैराग्यरूप परमहंसोचित धर्मों की शिक्षा देने के लिये बिल्कुल विरक्त हो गये। केवल शरीर मात्र का परिग्रह रखा और सब कुछ घर पर रहते ही छोड़ दिया। अब वे वस्त्रों का भी त्याग करके सर्वथा दिग्म्बर हो गये। उस समय

उनके बाल बिखरे हुए थे। उन्मत्त का वेश था। इस स्थिति में वे आह्वानीय (अग्निहोत्र की) अग्नियों को अपने में ही लीन करके सन्यासी हो गये और ग्रहावर्त देश से बाहर निकल गये। (श्रीमद् भागवत वैदिक पुराण)

ऋषभदेव की तपश्चर्चया-

वे सर्वथा मौन हो गये थे, कोई बात करना चाहता तो बोलते नहीं थे। जड़, अन्धे, बहरे, गूँगे, पिशाच और पागलों की सी चेष्टा करते हुए वे अवधूत बने जहाँ-तहाँ विचरने लगे।

कभी नगरों और गाँवों में चले जाते तो कभी खानों, किसानों की बस्तियों, बागीचों, पहाड़ी गाँवों, सेना की छावनियों, गोशालाओं, अहीरों की बस्तियों और यात्रियों के टिकने के स्थानों में रहते। कभी पहाड़ों, जंगलों और आश्रम आदि में विचरते। वे किसी भी रास्ते से निकलते तो जिस प्रकार जंगल में विचरने वाली हाथी को मक्खियाँ सताती हैं, उसी प्रकार मूर्ख और दुष्ट लोग उनके पीछे हो जाते और उन्हें तंग करते। कोई धमकी देते, कोई मारते, कोई पेशाब कर देते, कोई पूक देते, कोई ढेला मारते, कोई विष्ठा और धूल फेंकते, कोई अधोवायु छोड़ते और कोई खरी-खोटी सुनाकर उनका तिरस्कार करते। किन्तु वे इन सब बातों पर जारा भी ध्यान नहीं देते। इसका कारण यह था कि भ्रम से सत्य कहे जाने वाले इस प्रिया शरीर में उनकी अहंता ममता तनिक भी नहीं थी। वे कार्य-कारण रूप सम्पूर्ण प्रपञ्च के साक्षी होकर अपने परमात्म स्वरूप में ही स्थित थे, इसलिये अखण्ड चित्तवृत्ति से अकेले ही पृथ्वी पर विचरते रहते थे।

यद्यपि उनके हाथ, पैर, छाती, लम्बी-लम्बी बाँहें, कंधे, गले और मुख आदि अङ्गों की बनावट बड़ी ही सुकुमार थी। उनका स्वभाव से ही सुन्दर मुख आभाविक मधुर मुस्कान से और भी मनोहर जान पड़ता था। नेत्र नवीन कमल एवं के समान बड़े ही सुहावने, विशाल और कुछ लाली लिये हुए थे, उनकी पृतलियाँ शीतल एवं संताप हारिणी थी। उन नेत्रों के कारण वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे। कपोल, कान और नासिका छोटे-बड़े न होकर समान और सुन्दर थे, तथा उनके अस्फुट हास्य युक्त मनोहर मुखारविन्द की शोभा को देखकर पुरनारियों के चित्त में कामदेव का संचार हो जाता था, तथापि उनके मुख के आगे जो भूरे संग

की लम्बी-लम्बी घुंघरावली लटें लटकी रहती थीं, उनके महान भार और अवधूतों के समान धूलि-धूसरित देह के कारण वे ग्रहग्रस्त मनुष्य के समान जान पड़ते थे।

जब भगवान् क्रष्णभद्रे ने देखा कि यह जनता योग साधन में विघ्नरूप है, और इससे बचने का उपाय वीभत्सवृत्ति से रहना ही है, तब उन्होंने अजगरवृत्ति धारण कर ली।

क्रष्णभद्रे को क्रद्धि प्राप्ति-

उनके पास आकाश गमन, मनोजवित्व (मन की गति के समान ही शरीर का भी इच्छा करते ही सर्वत्र पहुँच जाना) अन्तर्धान, परकाय प्रवेश (दूसरे के शरीर में प्रवेश करना) दूर की बातें सुन लेना और दूर के दृश्य देख लेना आदि सब प्रकार की सिद्धियाँ अपने आप ही सेवा करने को आयीं, परन्तु उनका मन से आदर वा ग्रहण नहीं किया।

क्रष्णभद्रे का देह त्याग (मुक्ति)-

इसी से भगवान् क्रष्णभद्रे यद्यपि इन्द्रादि सभी लोकपालों में भी भूषण स्वरूप थे, तो भी वे जड़ पुरुषों की भाँति अवधूतों के से विविध वेश, भाषा और आचरण से अपने ईश्वरीय प्रभाव को छिपाए रहते थे। अन्त में उन्होंने योगियों को देह त्याग की विधि सिखाने के लिये अपना शरीर छोड़ना चाहा। वे अपने अन्तःकरण में अभेदरूप से स्थिर परमात्मा को अभिन्नरूप से देखते हुए वासनाओं की अनुवृत्ति से छूटकर लिंगदेह के अभिमान से भी मुक्त होकर उपराम हो गये।

विस्तृत परिज्ञान के लिये मेरी कृति (1) युग निर्माता : भगवान् क्रष्णभद्रे (2) कलिकाल में साधु क्यों बनें ? (3) दिग्म्बर जैन साधु का नगनत्व एवं केशलोच (4) तत्त्वानुचितन.....आदि का अध्ययन करें।

लोकेषण से होता है आर्त एवं रौद्र ध्यान -

(प्रसिद्धि बड़ों की अन्तिम दुर्बलता है तो छोटों की प्राथमिक दुर्बलता है।)

विधीयते ध्यानमवेक्षमार्ज्यदूत बोधैरिह लोककार्यम्।

रौद्रं तदार्तं च वदन्ति सन्तः कर्मदूमच्छेदनबद्धकांक्षाः॥ (109) अ. श्रा.

सांसारिक सौख्यमवाप्तुकामैर्ध्यानं विधेयं न विमोक्षकारि।

न कर्षणं सस्यविधायि लोके पलाललाभाय करोति कोऽपि ॥ (110)

जो बोध रहित अज्ञानी पुरुष लौकिक कार्य की इच्छा रखते हुए ध्यान करते हैं, उसे कर्मरूप वृक्ष को छेदने में कमर बाँधकर उद्यत सन्त जन रौद्र और आर्तध्यान कहते हैं। मोक्ष के सुख को करने वाला ध्यान सांसारिक सुख को पाने की इच्छा से ज्ञानियों को नहीं करना चाहिए। क्योंकि लोक में धान्य को उत्पन्न करने वाला कृषि कार्य कोई भी भूसे के लाभ के लिए नहीं करता है।

लोकरञ्जन/लोकसंग्रह, लोकेषणा, लौकिक कार्य, भीड़ जुटाने) के लिए गए धर्म-तप-त्याग-दान-स्वाध्याय-प्रवचन-ध्यान आदि यथार्थ से धर्म हांकर आर्तध्यान/रौद्रध्यान/कुध्यान पाप है, क्योंकि यह लक्ष्य छोटा/खोटा है, इसके लिए लन्द-फन्द, संक्लेश, ईर्ष्या-द्वेष, तोड़-फोड़, प्रतिस्पर्धा, भेद-भाव आदि कुकृत्य करने पड़ते हैं। भीड़ जोड़ने के लिए प्रलोभन से लेकर बाह्य प्रभावना करनी पड़ती है और भीड़ जुटने पर अहंकार हो जाता है तथा नहीं जुड़ने पर दीनता आती है, द्वेष, वैरत्व तथा विकर्षण होता है। संक्षिप्त में लौकिक भाषा में कहा जाए तो भीड़ जोड़ने के लिए पैर पड़ना पड़ता है, नहीं जुटने पर गला ढाना पड़ता है।

उपरोक्त कारणों से जैन धर्म, हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म आदि के धार्मिक ग्रन्थों में लोकेषणा से रहित आध्यात्मिक साधना करने के लिए निर्देश एवं आदेश दिए गए हैं, इतना ही नहीं महान् वैज्ञानिक आइन्स्टीन से लेकर बड़े-बड़े वैज्ञानिक, धार्मिक, लेखक आदि भी एकान्त साधना से ही अपने लक्ष्य को प्राप्त किये हैं और कर रहे हैं। अनेक वैज्ञानिक से लेकर चिन्तक तो लोक भीड़ से दूर रहने के लिए नोबल पुरस्कार तक स्वीकार नहीं करते हैं। उपनिषद्, अष्टावक्र गीता, आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों में भी लोकेषणा को पतन के लिए कारण कहा गया है। उपनिषद् में तो इसे शुक्र विष्टा तक कहा गया है। इसलिए विशेषतः आध्यात्मिक वाप्तक जहाँ भी रहे, भीड़ से अप्रभावित होकर आध्यात्मिक साधना करते हैं।

न धावति जनाकीर्णं नारण्यमुपशान्तधीः।

यथा तथा यत्र तत्र सम एवावतिष्ठते ॥ (100) अष्टा. गी.

शान्त बुद्धि वाला पुरुष न लोगों से भेरे नगर की ओर भागता है, न वन की ओर ही। वह सभी स्थिति और सभी स्थान में सम्भाव से ही स्थित रहता है।

ध्यानी सबसे धीर-वीर-ज्ञानी-सुखी-

यर्द्दिंडमानं जगदन्तराले धर्तुं न शक्यं मनुजामरेन्द्रैः ।

तन्मानसं यो विदधाति वशं ध्यानं स धीरो विदधात्यवश्यम् ॥(104)

अ. श्रावका.

जगत् के अन्तराल में डोलता हुआ जो मन नरेन्द्र, देवेन्द्र और अहमिन्द्रों के द्वारा भी वश में करने के लिए शक्य नहीं है, उस मन को अपने वश में कर लेता है, वह धीर-वीर पुरुष अवश्य ध्यान को करने में समर्थ होता है।

न रोषो न तोषो न मोषो न दोषो न कामो न कम्पो न दामो न लोभः ।
न मानो न माया न खेदो न मोहो यदीयेऽस्ति चित्ते तदीयेऽस्ति योगः ॥

(106)

जिसके चित्त में न द्रेष है, न राग है, न चोरी का भाव है, न अन्याय आदि कोई दोष है, न काम भाव है, न कम्पन है, न दम्भ है, न लोभ है, न मान है, न माया है, न खेद है और मोह है; उसी पुरुष के चित्त में ध्यान हो सकता है।

समाधि विद्वंसविधौ पटिष्ठं न जातु लोकव्यवहारपाशम् ।

करोति यो निष्पृहचित्तवृत्तिः प्रवर्तते ध्यानममुष्य शुद्धम् ॥ (108)

जो पुरुष समाधि के विद्वंस करने में अतिकुशल ऐसे लोक व्यवहार रूप जाल को कभी भी नहीं करता है, और जिसकी चित्तवृत्ति सर्व सांसारिक कार्यों से निष्पृह है उसी पुरुष के निर्मल ध्यान होता है।

नाकिनिकायस्तुतपदकमलोदीर्ण दुरुत्तर भवभयदुःखाम् ।

याति सभव्योऽमितगतिरनधां मुक्तिमनश्वर निरुपमसौख्याम् ॥ (114)

परम शुद्ध ध्यान को करने वाला ऐसा भव्य पुरुष अमितज्ञानी होकर औंतिकता, देव-समूह से पूजित चरण-कमल वाला बनकर दुरुत्तर भव-भय के दुःखों से रोता है तो मिली तो फिर आध्यात्मिक-स्वतन्त्रता तो बहुत दूर है। यथार्थ से कहें तो रहित, निर्दोष, अविनश्वर, अनुपम सुख वाली मुक्ति को प्राप्त करता है।

क्या भारतीय अपनी आध्यात्मिकता के अनुरूप हैं ? !

उपरोक्त वर्णनों से सिद्ध होता है कि भारतीय सभ्यता-संस्कृति-परम्परा-त्तिरिवाज आदि आध्यात्मिकता से अनुसृत है; सामान्य जन से लेकर चक्रवर्ती तक तदनुरूप आचरण करते थे; चारों आश्रम (ब्रह्मचर्य-विद्यार्थी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास), चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) चारों जाति (ब्राह्मण, वाङ्गीय, वैश्य, शूद्र) में भी यथायोग्य आध्यात्मिकता से युक्त होते थे। इसलिए तो भारत हर दृष्टि से विकसित श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, आदर्श था। भा + रत (भा = ज्ञान, रत = लीन, युक्त), “विश्व भरण पोषण कर जोई, ताकर नाम भारत अस होई” के कारण इस आर्यवर्त (श्रेष्ठ पुरुषों का देश) का यथार्थ नामकरण भारत हुआ। इसलिए भारत को विश्वगुरु, सोने की चिड़िया, दूध-दही की नदी वाला देश आदि गरिमामय सम्बोधन से अभिहित किया जाता था। किन्तु कालक्रम से जब वीर-धीरे आध्यात्मिकता से दूर होते गये तथा काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, माया के आधीन होकर सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-कामासकि में लिप्त होकर परस्पर भेद-भाव, संघर्ष, युद्ध करते हुए दुर्बल, दीन, हीन होते गए तब विदेशी आक्रान्ता, लुटेरों ने भारत को रोंदा, लूटा, शोषण किया, गुलाम/परतन्त्र बनाया।

सैकड़ों वर्षों के स्वतन्त्रता-संग्राम के कारण भारत को राजनैतिक स्वतन्त्रता मिली। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त हुए 63 वर्षों के पश्चात् भी भारत न पूर्ण गौरव प्राप्त कर पा रहा है, न ही सुख-शान्ति-प्रगति को प्राप्त कर पा रहा है। जो थोड़ा बहुत पढ़ाई, आर्थिक, औद्योगिक विकास हो रहा है, वह सब विनाश (अशान्ति, नाव, भेद-भाव, कलह, फैशन, व्यसन, अपहरण, आतंकवाद, हत्या, आत्महत्या आदि) के कारण और स्वतन्त्रता-स्वच्छन्दता (उत्थ्रुंखल, उदण्डता, अनैतिक-आचरण, तोड़-फोड़, हड़ताल, अश्लीलता, स्वच्छन्द यौनाचार, बलात्कार, तलाक, समलैंगिकता) में शीघ्रता से परिणत होता जा रहा है। इसके साथ-साथ भारत अभी तक श्रेष्ठ स्व-शिक्षा, स्व-भाषा, सभ्यता, संस्कृति, आध्यात्मिक-स्वतन्त्रता से दूर हो रहे हैं, दूर होने के भाव-व्यवहार कर रहे हैं।

क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्धान्त के अनुसार भारत को दीर्घ परतन्त्रता से मुक्त होने से स्वतन्त्रता की ओर प्रत्यावर्तन होना चाहिए था परन्तु खेद है स्वच्छन्दता की ओर तीव्रता से प्रत्यावर्तन हो रहा है। क्योंकि उपर्युक्त विशेष समस्याओं के अतिरिक्त भारत के प्रायः अधिकांश व्यक्तियों में आलस्य, लापरवाही, अप्रामाणिकता, अनुशासनहीनता, समय का दुरुपयोग, दिखावा-आडम्बर-अहंकार, ईर्ष्या, अकल बिना नकल, अन्धानुकरण, अहंमन्यमाना, तुच्छता, अव्यवस्था, मनमानी, गन्दगी फैलाना, शोध-बोध पूर्ण-सूक्ष्म-व्यापक-अनुभवात्मक-प्रायोगिक ज्ञान की कमी, आधुनिक-प्रगतिशील-शिक्षित-वैज्ञानिकता-सम्पन्न-सुन्दरता-सभा दिखाने के अन्धी दौड़, प्रतिस्पर्द्धा, नियम-कानून-मर्यादा-शालीनता-भाषा-संस्कृति के तोड़-मरोड़-विकृत विनाश करने की प्रवृत्ति आदि दुरुण पाये जाते हैं। उपर्युक्त समस्यायें एवं दुरुण प्रायः हर वर्ग, जाति, विभाग, पन्थ, मत, जनता से लेकर जनसेवक (नेता-मन्त्री), धार्मिक अनुयायी से लेकर साधु-धर्म प्रचारक, अशिक्षित से लेकर शिक्षित तक में न्यूनाधिक रूप में पाये जाते हैं। विशेष दुःखद विषय यह है कि अधिकांश अशिक्षित से शिक्षित में, गरीब से धनी में, नागरिक से नेता में सामान्यजन से संकीर्ण-कट्टर धार्मिकजन में, सामान्य धार्मिक से धार्मिक ठेकेदार-स्वार्थी-ढोंगी-सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-सम्पन्न धार्मिक पण्डित प्रवचनकार, साधु-दर्शक-प्रजा से अभिनेता-खेल-नेता-राजनेता में उपरोक्त समस्यायें एवं दुरुण अधिक से अधिक पाये जाते हैं। ऐसी विषमता पूर्ण परिस्थितियों में आध्यात्मिक साधकों को और भी अधिक सतर्कता बरतने की आवश्यकता है क्योंकि अभी ध्यान, प्राचीन महान् सांस्कृतिक देश कहलाने वाला देश भारत (यथार्थ से को तो इडियटों का देश इण्डिया) में भ्रष्ट अभिनेता (हीरो-हीरोइन यथार्थ से जीरो-जीरोइन), नेता, खलनेता (प्रभावशाली-बाहुबली-धनबली), खेल नेता (प्रसिद्धिलाड़ी) को महान्, भगवान्, आदर्श, बोल्ड, प्रशंसनीय, मॉडल, गैरव प्रगतिशील, श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, अनुकरणीय, पूजनीय आदि-आदि माना जाता है कहा जाता है, लिखा जाता है, प्रचारित किया जाता है, पुरस्कृत किया जाता है पूजा जाता है। ऐसी चकाचौंध वाली चमक में तो अधिकांश इंडियन चौंधिया जा हैं, जिससे आध्यात्मिक पुरुष दिखाई नहीं देते हैं जिससे उन्हें पैर से रोंद देते हैं

भले निम्न कक्षा की पुस्तकों से लेकर उच्च शिक्षा तक, विद्यार्थी से लेकर शिक्षक, प्राचार्य, कुलपति, शिक्षा मन्त्री तक सामान्य नागरिक से लेकर प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति तक भारतीय महान् संस्कृति का गुणान, लेखन, प्रवचन करते हैं तथापि उनमें से भी अधिकांश लोग न भारतीय संस्कृति को जानते हैं, न मानते हैं, न ही अपनाते हैं। केवल लेखन, प्रवचन आदि के माध्यम से भारतीय संस्कृति को महान् बताने के बहाने अपनी अहंवृत्ति की ही पुष्टि करते हैं तथा प्रदर्शन करते हैं। यह प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अहंग्रन्थि एवं हीनग्रन्थि का ही प्रगटीकरण है। इतना ही नहीं जो यथार्थ से भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति के अनुसार सोचते हैं, बोलते हैं, लिखते हैं, आचरण करते हैं उन्हें भी वे Out of date पिछड़ापन, अन्धविश्वास, असभ्य, रुद्धिवादी मानते हैं, बोलते हैं एवं तदनुकूल दुर्व्यवहार भी करते हैं।

सबसे अत्यन्त विचित्रपूर्ण दुःखद विषय यह है कि धार्मिक सम्प्रदाय वाले भी प्रायः आध्यात्मिक कम किन्तु संकीर्ण, कट्टर, अनुदार, भेद-भाव वाले, ख्याति, पूजा, प्रसिद्धि, सम्पत्ति, वर्चस्व, ईर्ष्यालु, निष्क्रिय, निकम्मे, परोपदेश झाड़ने वाले, दूसरे पंथ-मत-परम्परा वालों से घृणा करने वाले रुद्धिवादी होते हैं, भले दिखावा रूप से लेखन, प्रवचन में स्वयं को आदर्श, सांस्कृतिक, अहिंसक, दूसरों से श्रेष्ठ, आध्यात्मिकवादी सिद्ध करते हैं। इसलिए इनमें भी सनम्र सत्यग्राहिता, समता, सहिष्णुता, प्रगतिशीलता, शान्ति, मैत्री, प्रगतिशीलता, वैश्विक दृष्टिकोण, आत्मविश्वास, आत्मानुभव, निर्लोभता, क्षमा, सहज-सरलता, मृदुता, नप्रता, एकता, समन्वय, सदाशयता, तेजस्विता, महान् उद्देश्य, विशालता, धैर्य, वीतरागता, प्रभाव उत्पादकता आदि उत्तम गुण नहीं पाये जाते हैं।

अभी भी हैं भारत में आध्यात्मिक प्रेमी -

उपर्युक्त परिस्थिति में आध्यात्मिक साधकों को यथायोग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, व्यक्ति, साधन के अनुकूलता से साधना करनी चाहिए। बहुरत्न वसुन्धरा, आप भला तो जग भला, There are good in bed of us, यादृशी भावना यस्य प्रिद्विर्भवति तादृशी के अनुसार अभी भी विविध वर्ग में गुणग्राही, सज्जन, परोपकारी, सेवाभावी, आध्यात्मिक प्रेमी, दानवीर, सहयोगी, उदार, व्यक्ति होते हैं। वे स्वयं सहज प्रवृत्ति से आध्यात्मिक पुरुषों से आकर्षित होकर या आध्यात्मिक पुरुष की

विषय-सूची

पृ. सं.

मूल भावना-द्वारिंशतिका

- आध्यात्मिक साम्यवाद एवं विश्वशान्ति भावना -

○ आध्यात्मिक रहस्य	1
(1) विश्व के विविध जीवों के प्रति आत्मिक भावना	23
(2) आत्मदोषों को दूर करने के लिए प्रार्थना	23
(3) समस्त अनुकूल-प्रतिकूलताओं में साम्यभाव	24
(4) परमात्म चिन्तन में चित्तलीनता की भावना	25
(5) एकेन्द्रियादि जीवों के प्रति कृत दोषों के परिशोधन	26
(6) चारित्र सम्बन्धी दोषों के परिशोधन	27
(7) दोष परिशोधन के उपाय	28
(8) विविध स्तरों के दोष	29
(9) विविध स्तरों के दोषों के कारण	29
(10) ज्ञानार्जन (वाचना) सम्बन्धी दोष संशोधन	31
(11) ज्ञानार्जन के विविध महान् उद्देश्य	32
(12) पूजनीय-परमात्मा का चिन्तन	33
(13) ज्ञानानन्द-परमात्मा का चिन्तन	33
(14) विश्वज्ञ-परमात्मा का चिन्तन	34
(15) मुक्तिमार्ग प्रतिपादक-परमात्मा का चिन्तन	35
(16) सम्पूर्ण दोषों से मुक्त-परमात्मा का चिन्तन	35
(17) विश्व व्यापक (विश्वज्ञ) - परमात्मा का चिन्तन	36
(18) निर्दोष-परमात्मा के शरणाश्रित	37
(19) ज्ञान-ज्योति-परमात्मा के शरणाश्रित	37
(20) शुद्ध शिव शान्त-परमात्मा के शरणापन्न	40
(21) सर्व दोष रहित-परमात्मा के शरणापन्न	41

शक्ति से आकर्षित होकर उनकी सेवा, व्यवस्था, सुरक्षा आदि स्व-प्रेरणा से करते हैं। जैसा कि मधुमक्खी फूल के मकरन्द को ग्रहण करने के लिए दूर-दूर तक ढूँढ़-ढूँढ़ कर जाते हैं, वैसा ही आध्यात्मिक रस के प्रेमी दूर-दूर से ढूँढ़-ढूँढ़ कर आध्यात्मिक साधक के पास जाते हैं। अभी तो देश-विदेश के अनेक जैन-अजैन उच्च शिक्षित, श्रीमान्, धीमान् सम्पूर्ण संकीर्णता की सीमा को लांघकर वैज्ञानिक-आध्यात्मिक-स्व-पर विश्व कल्याणकारी धर्म एवं धार्मिक सन्त-सज्जन से आकर्षित/प्रभावित होकर आते हैं, लाभान्वित होते हैं तथा स्व-पर-विश्वकल्याण के लिए पुरुषार्थ भी करते हैं, इसके लिए ज्वलन्त उदाहरण है - विश्व धर्म संसद (सभा) गायत्री परिवार, पीस नेक्स्ट (Peace Next), JAINA, से लेकर धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान, धर्म-दर्शन सेवा संस्थान इत्यादि के सदस्य, कार्यकर्ता व सहयोगी समर्थक।

इसलिए आध्यात्मिक साधक को स्वयं साधना को उत्तरोत्तर वृद्धिंगत करना चाहिए जिससे आध्यात्मिक शक्ति से तो स्वयं का कल्याण होगा ही, साथ ही साथ और भी अधिक से अधिक आध्यात्मिक प्रेमी जन आकर्षित होकर सेवादि करके अपनी भी आत्मिक रुचि को और भी वृद्धि करके लाभान्वित होंगे।

धन्या भारतवर्ष संभवजना योऽद्यापि कालौ ।

निस्तीर्थेश्वर के वले निरवद्यो भ्रश्यन्मनःपर्यये ।

त्रुट्यच्छोत्र विशेष सम्पदि भव दौर्गत्य दुःखापदि ।

श्री जिनेन्द्र वचोनुरागवशतः कुर्वित धर्मोद्यतम् ॥

वर्तमान घोर पंचम कलिकाल में तीर्थकर, केवली, अवधि, मनःपर्यय ज्ञानियों का अभाव है, योग्य श्रोताओं का भी अभाव है, विशेष वैभव से रहित, दरिद्रता आदि संकट से सहित कलियुग के मनुष्य हैं। इस प्रकार विपरीत (विषय) कलियुग में भी श्री जिनेन्द्र देव के वचनानुसार जो पुरुष धर्म में उद्यत होते हैं, वे अत्यन्त अभिवन्दनीय, अभिनन्दनीय एवं धन्यवाद के पात्र हैं।



आचार्य अभितगति रचित आवना-द्वात्रिंशतिका

भावार्थ एवं प्राप्त शिक्षायें - आचार्य कनकनन्दी
विश्व के विविध जीवों के प्रति आध्यात्मिक भावना-
सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदाममात्मा विदधातु देव ॥ (1)

O lord ! make my self that I may always have love for all
beings, pleasure in the company of learned (good) men,
unstinted sympathy for those in pain, and tolerance towards
those perversely inclined.

भावार्थ - हे भगवान् ! विश्व के सम्पूर्ण जीवों के प्रति मैत्री-भाव, गुणी
जनों के प्रति प्रमोद भाव, दुःखी जीवों के प्रति कृपा-भाव, विपरीत वृत्ति वालों के
प्रति माध्यस्थ भाव मेरा सदा हो ।

प्राप्त शिक्षाएँ - स्व-पर-विश्व कल्याण के लिए हमें सतत उपर्युक्त भाव-
व्यवहार करना अनिवार्य है । इसके अतिरिक्त केवल बाह्य शिक्षा-धर्म-संविधान-
प्रवचन-चर्चा-कानून-विज्ञान-सत्ता-सम्पत्ति से भी स्व-पर-विश्व कल्याण संभव
नहीं है । उपर्युक्त भाव-व्यवहार ही यथार्थ से शिक्षा-धर्म-संविधान-कानून-विज्ञान-
आध्यात्मिक भावना आदि है । इससे ही सर्वोदय-साम्यवाद-विश्वमैत्री-विश्वशान्ति-
निरस्त्रीकरण, पर्यावरण सुरक्षा, सर्वजीव अधिकार, मानवाधिकार सम्भव है । मैत्री
भाव से प्रत्येक जीवों की रक्षा होती है, तो प्रमोदभाव से गुणग्रहण होता है । कृपा
भाव से दूसरों की सहायता होती है, तथा माध्यस्थभाव से वैर, विद्रोष, कलह,
हत्या, आतङ्कवाद, युद्ध तक नहीं होता है ।

आत्मदोषों को दूर करने के लिए प्रार्थना -

शरीरतः कर्तुमनन्तशक्तिं, विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम् ।

जिनेन्द्र ! कोषादिव खड्गयष्टि, तत्र प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥(2)



(22) आत्मशुद्धि के उपाय : कषायादि से मुक्ति	44
(23) बाह्य वासना त्याग से आत्मलीनता	45
(24) स्वास्थ्य-मुक्ति के लिए बाह्यासक्ति त्याग	46
(25) आत्मलीनता से समाधि	46
(26) स्व-शुद्धात्मा से भिन्न है कर्मज उपलब्धियाँ	49
(27) भौतिक-कर्मज आत्मा से भिन्न	50
(28) दुःखदायी संयोग सर्वथा त्यजनीय	53
(29) विकल्प त्याग से परमात्म लीनता	55
(30) स्वकृत कर्म ही शुभाशुभ	57
(31) स्व-कर्म फल चिन्तन से साम्यभाव	58
(32) परमात्म-चिन्तन एवं पवित्रता से मुक्तिलाभ	61
(33) उपसंहार एवं उद्देश्य	63
 परिशिष्ट - (I) पूर्ण हुई/हो रही और होने की प्रतीक्षा में है मेरी भावनाएँ	
परिशिष्ट - (II) आध्यात्मिक भावना	
परिशिष्ट - (III) रहस्य के रहस्य	
परिशिष्ट - (IV) आचार्य कनकनन्दी के अध्ययन-अध्यापन के कुछ विषय	
परिशिष्ट - (V) सत्परमार्श-सदुदेश्य की पूर्ण शान्ति की प्राप्ति के सूत्र	
परिशिष्ट - (VI) वि. वि. में आ. कनकनन्दी साहित्य कक्ष की स्थापना एवं शोधकार्य	
परिशिष्ट - (VII) आध्यात्मिक-अष्टक	
परिशिष्ट - (VIII) साक्षरता-ज्ञान एवं सच्चा ज्ञान की उपलब्धियाँ	65-95
○ वैज्ञानिक आध्यात्मिका से संभव विश्व शांति	97
○ आ. कनकनन्दी को अध्यक्ष्य मानवाधिकार का प्रेषित-पत्र	99
○ आचार्य श्री कनकनन्दी संसंघ सम्बन्धी संस्था, वेबसाइट आदि	100

May Thy grace enable me, Jinendra ! to separate, like the sword-stick from its scabbard, the self, which is faultless and possessed of infinite power from the body.

भावार्थ - हे भगवन् ! आपके प्रसाद से मुझे इतनी शक्ति प्राप्त हो जिससे मैं मेरे अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्मा से दोषों को दूर करके शरीर से भी पृथक् करने के लिए समर्थ बनूँ। जैसा कि तलवार को म्यान से पृथक् किया जाता है, वैसा ही मैं मेरे आत्मा को दोष एवं शरीर से पृथक् करूँ।

प्राप्त शिक्षाएँ - भगवन् से सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-भोग-बाह्य शत्रु पर विजय प्राप्त करने की याचना करके याचक, भिखारी, दीन-हीन बनके संसार में चिर दुःखी बनने की प्रार्थना नहीं करना चाहिए अपितु स्वयं में निहित दोष, कमियाँ, अपराध, कर्म, अन्तरङ्ग शत्रु को दूर/परास्त करने के साथ-साथ स्व-शरीर को भी पृथक् करके स्व-आत्मा को पवित्र-निर्दोष-अनन्त शक्ति-वैभव सम्पन्न बनाकर अनन्त सुख-शान्ति के मालिक/प्रभु/स्वामी बनने की प्रार्थना करनी चाहिए।

प्रत्येक जीव स्व-दोषों से ही दुःखी होते हैं तथा असफल होते हैं तथा दोष दूर करने से सुखी होते हैं, विकास करते हैं। जिस प्रकार विज्ञान के अनुसार $E=MC^2$ या परमाणु विघटन से ऊर्जा उत्पन्न होती है, उसी प्रकार जीव जब स्वदोष से स्वयं को पृथक् करता है तब स्व में निहित अनन्त शक्तियों का उद्भव, प्रकटीकरण/विस्फोट होता है।

समस्त अनुकूल-प्रतिकूलताओं में साम्यभाव-

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेष ममत्वबुद्धेः, समं मनोमेऽस्तु सदापि नाथ ॥ (3)

O lord ! may my mind, after a complete destruction of all sense of attachment, be always at equilibrium, in pleasure and

pain, among friends and foes, in gain and loss, at home and forest.

भावार्थ - हे प्रभु ! मेरा मन समस्त ममत्व बुद्धि (मोहासक्ति) से रहित होकर दुःख-सुख, शत्रु-मित्र, संयोग-वियोग, भवन-वन में सदा समता में रहे।

प्राप्त शिक्षाएँ - अनुकूलता-प्रतिकूलता, आकर्षण-विकर्षण, शत्रुता-मित्रता आदि में अप्रभावित होकर सन्तुलित-तटस्थ रहने से मन में भाव में तनाव-क्षोभ-चञ्चलता-अस्थिरता आदि दुःखकारक तत्त्व उत्पन्न नहीं होते हैं, पापकर्म का आस्रव-बन्ध नहीं होता। इससे व्यक्ति शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक दुःख, रोग, समस्या से मुक्त हो जाता है। इसके साथ-साथ व्यापक साम्यभाव से व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, वैश्विक समस्या-संघर्ष-युद्ध आदि समाप्त हो जायेंगे। ऐसा ही भाव-व्यवहार दैनिक चर्या, भोजन, जीवन चर्या, गृह, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व में, प्रकृति आदि में सन्तुलन होना स्वास्थ्य, सुख-शान्ति, विकास, व्यवस्था आदि के कारण है।

परमात्म चिन्तन में चिंत्तलीनता की भावना-
मुनीश ! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निषाताविव विम्बिताविव।
पादी त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमोधुनानौ हृदि दीपिकाविव ॥ (4)

O Revered of all saints ! may Thy feet be ever enshrined in my heart and act as a light to remove all darkness and three be engraved and impressed, and fixed, and imaged, and unified with it.

भावार्थ - हे मुनियों के स्वामी ! आपके चरण कमल मेरे हृदय में लीन, समावेश, स्थिर, उत्कीर्ण, बिम्बित, प्रकाशित होकर सदा विराजमान रहे।

प्राप्त शिक्षाएँ - केवल भगवन् का भजन, स्मरण, पूजन बाह्य-दिखावा करने से समय-साधन-श्रम का केवल दुरुपयोग होता है। क्योंकि इससे

भाव में पवित्रता-स्थिरता नहीं आती है, पाप आस्रव एवं बन्ध नहीं रुकता है, सातिशय पुण्य बन्ध नहीं होता है, कर्म की निर्जरा नहीं होती है, किन्तु भगवत् स्मरण आदि पवित्रता-स्थिरता से करने से मन प्रसन्न होता है, तनाव-संक्लेश-भय-सन्देह आदि दूर होते हैं, पापास्रव-बन्ध रुकता है, सातिशय पुण्य बन्ध होता है, कर्म की निर्जरा होती है, जिससे शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक रोग दूर होते हैं, परम्परा से मोक्ष मिलता है। भाव की पवित्रता-एकाग्रता से आध्यात्मिक महापुरुषों के गुणानुवाद-गुण स्मरण से धीरे-धीरे वे आध्यात्मिक गुण भी भक्त के भाव में प्रगट होते जाते हैं जिससे भक्त धीरे-धीरे भगवान् बनता जाता है। जैसा कि सूर्य किरण लैन्स के माध्यम से केन्द्रीभूत होकर स्थिर होने पर तापमान में वृद्धि होते-होते अग्नि उत्पन्न हो जाती है; वैसा ही आध्यात्मिक महापुरुषों के ध्यान, मनन, स्मरण, पूजन, पवित्रता-एकाग्रता से करने से स्वयं में निहित आध्यात्मिक गुण (ज्ञान, समता, सुख, शान्ति) धीरे-धीरे प्रगट होते जाते हैं और भव्य-भक्त भगवान् बनता जाता है।

एकेन्द्रियादि जीवों के प्रति कृत दोषों के परिशोधन-
एकेन्द्रियाद्या यदि देव ! देहिनः, प्रमादतः सञ्चरता इतस्ततः ।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिताः, तदस्तु मिथ्या दुर्सुष्ठितं तदा ॥ ५ ॥

O lord ! if I have, by carelessly moving hither and thither, destroyed, cut as under brought in (incompatible) connection, or otherwise injured any organism possessed of one or more senses, may wrong action of mine be annulled.

भावार्थ - हे देव ! यदि प्रमाद से इधर-उधर सञ्चरण करते हुए मेरे द्वारा एकेन्द्रियादि जीव नष्ट हुए हों, अलग किये गये हों, मिलाये गये हों, पीड़ित किये गये हों, तो वह दुष्कृत मिथ्या/व्यर्थ/दूर हो।

प्राप्त शिक्षाएँ - प्रत्येक जीव जीना चाहता है, सुखी होना चाहता है,

क्योंकि जीव का मूल स्वभाव शाश्वतिक एवं सुखमय है। इसलिए किसी भी जीव को किसी भी प्रकार के कष्ट नहीं देना चाहिए। जानबूझकर (संकल्प, इच्छापूर्वक, लक्ष्य) किसी भी जीव को कष्ट देना सदा-सर्वदा-सर्वथा अपराध/पाप/हानिकारक होने से अविधेय है, वर्जनीय है, किन्तु प्रमादवशतः भी किसी भी जीव को कष्ट पहुँचने पर पश्चात्ताप करना चाहिए, प्रायश्चित्त लेना चाहिए और ऐसे कुकृत्य से निवृत्त होना चाहिए। यह ही यथार्थ से अहिंसा, सहअस्तित्व, पर्यावरण सुरक्षा, जीओ और जीने दो, उदार पुरुषाणां वसुधैव स्वकुटुम्बकम्, विश्वमैत्री, विश्व बन्धुत्व, आत्मवत् सर्वभूतेषु, परोपकार पुण्याय पापाय परपीडनम्, विश्वक संविधान-कानून है।

चारित्र सम्बन्धी दोषों के परिशोधन -

पिमुक्तिमार्ग प्रतिकूल वर्तिना, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया ।

चारित्रशुद्धेयदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥ (6)

Moving away from the path of salvation, if I, over-powered by passions and senses, have, owing to perversity, omitted to observe the rules of purity of conduct, may such errors of mine, O master ! be set at naught.

भावार्थ - हे प्रभु ! मोक्षमार्ग से विपरीत प्रवृत्ति करने वाला, दुर्बुद्धि वाला या द्वारा कषाय एवं इन्द्रियों के वश होकर चारित्र की शुद्धि में जो कुछ लोप किया गया है, वह सब मेरा दुष्कृत व्यर्थ/नष्ट होवे।

प्राप्त शिक्षाएँ - मोक्षमार्ग (स्वतन्त्रता, मुक्ति, परिनिर्वाण) कषाय से रहत, इन्द्रियासक्ति से परे पवित्र चारित्र वाला है। इसलिए जो मोक्षपथ के पथिक हों उसे विषय-कषाय, दुष्चारित्र, दुर्बुद्धि से परे होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त केवल बाह्य धार्मिक क्रिया-काण्ड, वेश-भूषा, परम्परा, रीति-रिवाज, पर्व, तीहार, तीर्थयात्रा, पूजा-पाठ, जप-तप, भजन, कीर्तन, भाषण, कथा-वाचन

आदि से मुक्ति मिलना सम्भव नहीं है। यदि निष्कषाय, इन्द्रिय संयम, सद्बुद्धि के लिए या इनसे युक्त होकर धार्मिक क्रिया-काण्ड किया जाता है तो वह सब मोक्षमार्ग के लिए साधक है अन्यथा बाधक/व्यर्थ/अनुपयोगी है।

दोष परिंशोधन के उपाय -

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं, मनो वचः काय कषाय निर्मितम् ।

निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम् ॥ (7)

I destroy sin, from which all ills in the cosmos proceed, whether committed through mind, or word, or body, or passion, by self analysis, self censure, and repentance, just as a doctor completely removes all effects of poison by the force of incantation.

भावार्थ- यथा मान्त्रिक वैद्य मन्त्र के गुणों के द्वारा सम्पूर्ण विष को दूर कर देता है तथा मैं मन-वचन-काय तथा कषाय से निर्मित पाप जो कि संसार के दुःख के कारणभूत हैं उसे निन्दा, गर्हा, आलोचना के द्वारा नष्ट करता हूँ।

प्राप्त शिक्षाएँ- जिस प्रकार शरीर में विष प्रवेश करने पर पीड़ा से लेकर मृत्यु तक सम्भव है परन्तु मन्त्र, औषधि आदि के द्वारा उस विष को दूर/नष्ट करके स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं उसी प्रकार मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना तथा क्रोध-मान-माया-लोभ से उत्पन्न पाप (कर्म) जो संसार के विभिन्न दुःखों के कारण हैं उसे दूर/नष्ट करके सांसारिक दुःखों को भी नष्ट करके अक्षय, अनन्त सुख प्राप्त कर सकते हैं। स्व-दोष को दूर करने के लिए निन्दा (आत्म साक्षी पूर्वक स्वयं-दोष विश्लेषण) गर्हा (गुरु-साक्षी पूर्वक स्व-दोष-विश्लेषण), आलोचना करना चाहिए। यह आध्यात्मिक शुद्धिकरण, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, सामाजिक-न्यायिक प्रक्रिया से भी सरल-सहज-शुद्ध-गुणकारी-चिरस्थायी-सर्वदोषनिवारक तथा शारीरिक-मानसिक-सामाजिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए अभौतिक रामबाण औषधि है।

विविध स्तरों के दोष -

अतिक्रमं यद्विमतेव्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्र कर्मणः ।

व्याधामनाचार मपि प्रमादतः-प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥ (8)

O World-victor! I purify myself by performing expurgation for all foolish deviations from rectitude due to indifference whether it be Atikrama, Vyatikrama, Atichara and Anachara.

भावार्थ- हे जिनेन्द्र ! मैंने कुबुद्धि से सुचारित्र रूपी क्रिया का प्रमाद के कारण जो अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार किया हो, उसकी शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण करता हूँ।

प्राप्त शिक्षाएँ- किसी भी अन्तरङ्ग एवं बहिरंग कारणों के वश से प्रमाद अतिक्रम-व्यवहारों से ज्ञात-अज्ञात से भी कुछ न कुछ दोष उत्तम चारित्र में जग्ना सम्भव है। ऐसी परिस्थिति में उस दोष को दूर करना प्रत्येक सुखकामी, विकास को चाहने वाले महानुभावों का नैतिक-आध्यात्मिक कर्तव्य है क्योंकि तक जीव छद्मस्थ (असर्वज्ञ, अवीतरणी, घाति कर्म से युक्त) रहता है तब तक पूर्व के उपर्जित कर्म के उदय से दोष उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इसलिए आध्यात्मिक प्रगति, मानसिक शान्ति के लिए, शारीरिक व मानसिक रोग दूर करने के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा/सम्मान/शुद्धता आदि के लिए प्रतिक्रमण सहज-आध्यात्मिक उपाय है।

विविध स्तरों के दोषों के कारण -

अति मनः शुद्धि विधेरतिक्रमं-व्यतिक्रमं शील व्रतेर्विलङ्घनम् ।

अतिचारं विषयेषु वर्तनं-वदन्त्यनाचार मिहाति सक्तताम् ॥ (9)

Atikrama is the defiling of the pure condition of mind, and Vyatikrama is transgression of pure mental action, Atichara, O अतिचार is indulgence in sensual desires, and Anachara is defined as excessive attachment (to them).

भावार्थ- हे प्रभु ! इस लोक में (1) मानसिक शुद्धि की विधि में क्षति होने को अतिक्रम, (2) शीलब्रत (सदाचार) के उल्लङ्घन को व्यतिक्रम, (3) विषयों में प्रवृत्ति करने को अतिचार, (4) विषयों में अत्यन्त आसक्त होने को अनाचार कहते हैं।

प्राप्त शिक्षाएँ- आत्मिक शुद्धि के इच्छुक दोषों के विभिन्न स्तर को जानता है/जानना चाहिए। क्योंकि दोषों के स्तर/डिग्री/मात्रा के अनुसार ही उसको दूर करने के उपाय भी तदनुकूल होते हैं। “जो पिण्डे सो ब्रह्माण्डे,” “यथा मति तथा गति” के अनुसार दोष या गुण का अंकुर मन-भाव से ही होता है और विकास क्रम से वृद्धिगत होता है। यदि बीज का अभाव ही हो या अंकुर होने ही नहीं दिया जाए तो आगे का विकास क्रम भी सम्भव नहीं है। इसलिए दोष के विकास क्रम को नहीं चाहने वाले महानुभाव प्रथमतः मानसिक अशुद्धता को ही उत्पन्न नहीं करता है/उत्पन्न होने को ही रोक देता है।

इससे विपरीत पापी/दोषी/अन्यायी/अत्याचारी/दुराचारी/आतंकवादी मन में उत्पन्न अशुद्धता को नहीं रोकता है/रोकना नहीं चाहता है/या जान-बूझकर बढ़ाता है। मन में अशुद्धता का उत्पन्न होना ही (1) अतिक्रम है।

इस दोष के विकासक्रम में सदाचार का उल्लङ्घन करके (2) व्यतिक्रम के स्तर पर पहुँच जाता है। पुनः उस स्तर से बढ़ता हुआ विषयों (क्रोध-मान-माया-लोभ, हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रहाचर्य, परिग्रह आदि) में प्रवृत्ति करता है। इस स्तर को (3) अतिचार कहते हैं।

“अभ्यास से गुणवत्ता में वृद्धि होती है” के नियमानुसार अतिचार में प्रवृत्ति करता-करता दोषों की मात्रा को बढ़ाते हुए दोष के चरमस्तर में पहुँच जाता है जिस स्तर को (4) अनाचार कहते हैं। इस अवस्था में विषयों में अत्यन्त आसक्ति होती है। इस विभिन्न स्तरों को समझने के लिए धूमप्राप्ति, मद्यप्राप्ति, नशीली वस्तुओं के सेवन करने वालों के विभिन्न स्तरों की प्रकृति-प्रवृत्ति उदाहरण के योग्य है।

ज्ञानार्जन (वाचना) सम्बन्धी दोष संशोधन -
यदर्थमात्रा पदवाक्यहीनं-मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम् ।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी-सरस्वती केवलबोधलब्धिम्॥ (10)

O Goddess Saraswati! pray excuse me if through inattention, I have uttered anything wanting in meaning, spelling, word, or sense and grant me the boon of knowledge absolute.

भावार्थ- हे माता सरस्वती देवी ! यदि मेरे द्वारा प्रमाद से अर्थ, मात्रा, वाक्य से हीन कुछ भी कहा गया हो तो मुझे उस सम्बन्धी क्षमा प्रदान करके केवलज्ञान की उपलब्धि प्रदान करें।

प्राप्त शिक्षाएँ- ज्ञानार्जन के अनेक (8) शुद्धियाँ हैं। यथा- (1) काल (2) विनय शुद्धि (3) उपधान शुद्धि (4) बहुमान शुद्धि (5) अनिन्द्रव शुद्धि (6) व्यञ्जन शुद्धि (7) अर्थ शुद्धि (8) उभय शुद्धि। इन शुद्धि से युक्त ज्ञानार्जन क्रमकल्याण के लिए, केवलज्ञान प्राप्त करने के लिए कारक बनता है। अशुद्धि सही ज्ञानार्जन नहीं हो पाता है, ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध होता है जिससे ज्ञान होता है, मन्द होता है। अतः यदि प्रमाद से भी अशुद्धि हो जाती है तो उसे रोकना चाहिए। यदि शुद्धता से ज्ञानार्जन करते हैं और प्रमाद से विस्मरण भी हो जाता है तो वह ज्ञान का संस्कार पर भव में केवलज्ञान उत्पन्न करने के लिए साध्यक बनता है।

इससे शिक्षा मिलती है कि केवल अध्ययन ही पर्याप्त नहीं है, अपितु क्या अध्ययन करना और कैसे अध्ययन करना अधिक महत्वपूर्ण है। जैसा कि सही प्राप्त करने के लिए सही बीज, काल, भूमि, पानी, सूर्य-किरण, वायु, खाद चाहिए वैसा ही ज्ञान रूपी फल प्राप्ति के लिए उपरोक्त 8 शुद्धियाँ भी योग्य हैं।

ज्ञानार्जन के विविध महान् उद्देश्य-

बोधि: समाधि: परिणामशुद्धिः-स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः।
चिन्तामणि चिन्तितवस्तुदाने-त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि ॥ (11)

O Goddess, thou art like the jewel Chintamani is granting all desired objects. May I, by worshipping thee obtain wisdom control, control of mind, purity of thought, realization of my own self and perfect happiness ever-lasting.

भावार्थ- मैं देवी सरस्वती ! आप चिन्तित वस्तु को देने में चिन्तामणि समान आपको वन्दन करने वाले मुझे बोधि, समाधि, परिणाम-विशुद्धि, स्वात्म की उपलब्धि, मोक्ष सुख की सिद्धि होवे ।

प्राप्त शिक्षाएँ- ज्ञानार्जन/स्वाध्याय के प्रमुख उद्देश्य जानकारी के संग्रह्यता, पूजा, लाभ, धनार्जन, परीक्षा में उत्तीर्ण, प्रसिद्धि, अहंवृत्ति, दिखाव भाषण देना आदि नहीं है अपितु इससे विपरीत सत्य-तथ्य का परिज्ञान, आत्मलीन रूपी समाधि, भाव की परिशुद्धता, समता, निस्पृहता, निर्लोभता, संतोषहिष्णुता, वीतरागता, मोक्ष ही ज्ञानार्जन/स्वाध्याय के यथार्थ फल है ।

अविद्याभिदुरं ज्योतिः, परं ज्ञानमयं महत् ।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् दृष्टव्यं मुमुक्षुभिः ॥ (49)

अविद्या को दूर करने वाली महान् उत्कृष्ट ज्ञान ज्योति है । सो मुमुक्षु (मोक्षाभिलाषियों) को उसी के विषय में पूछना चाहिए और उसी की वांछा का चाहिए और उसे ही अनुभव में लाना चाहिए ।

प्रकृष्ट सिद्धि=प्रसिद्धि=सिद्धि स्वात्मोपलब्धिः अर्थात् स्व-आत्मा की उपलब्धि ही प्रसिद्धि/सिद्धि/मोक्ष है । इस परमोत्कर्ष अवस्था/पूर्ण अवस्था आध्यात्मिक अनन्त गुणों के साथ-साथ ईश्वरत्व/प्रभुत्व आदि गुण शुद्ध रूप सहज रूप में, स्वभाव रूप में प्रगट होते हैं और उसका अनुभव शुद्ध जीव करते

पूजनीय परमात्मा का चिन्तन -

यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृन्दैः, यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः-स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥ (12)

May that Lord of Lords be enshrined in my heart, who is an object of contemplation for groups of ascetic saints, to whom all monarchs and archangels sing hallelujahs and who is praised in Vedas, Puranas and Shastras.

भावार्थ- जो सम्पूर्ण मुनियों के समूह के द्वारा स्मरण किये जाते हैं, जो सर्ववेदन्, देवेन्द्र के द्वारा स्तुति किये जाते हैं, जो वेद, पुराण, शास्त्रों के द्वारा गाये जाते हैं, वे देवों के भी देव मेरे हृदय में विराजमान रहें । ऐसे देवाधिदेव महादेव भगवान् का स्वरूप अग्र श्लोकों में वर्णित है ।

ज्ञानानन्द-परमात्मा का चिन्तन -

यो दर्शनज्ञान सुखस्वभावः-समस्त संसार विकारवाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः-स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥(13)

May that Lord of Lords be enshrined in my heart, whose nature, is knowledge, wisdom and happiness, is free from all imperfections pervading the world, who is accessible in contemplation and who is called the highest self.

भावार्थ- जो अनन्त अक्षय दर्शन-ज्ञान-सुख स्वभावी हैं; संसार के समस्त विकारों से परे हैं, जिसे परमात्मा रूप में सम्बोधित किया जाता है, जो समाधि (भग आत्म-ध्यान) के द्वारा जाने जाते हैं, वे देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान हों ।

प्राप्त शिक्षाएँ- जो अक्षय अनन्त सुख-शान्ति, ज्ञान, वीर्य आदि को देवे/भगवान् वे ही यथार्थ से देव हैं । जो भग+वान् (भग=ज्ञान, वान्=सम्पन्न,

युक्त) अर्थात् अनन्त ज्ञानवान् हैं वे ही यथार्थ से भगवान् हैं। ऐसे महान् प्रभु अवस्था-उपलब्धियों से युक्त वे ही होते हैं, जो सांसारिक समस्त विकारों (मोक्षमाया, अज्ञान, क्रोध, मद, काम, ईर्ष्या, द्वेष, भौतिक शरीर, जन्म, मरण, क्षुधा-प्यास, वृद्धत्व आदि) से रहित होते हैं, अमूर्तिक आध्यात्मिक स्वरूप से केवल परम आत्म ध्यान के द्वारा ही परिज्ञान/अनुभव/अधिगम होते हैं। परमात्म स्वरूप महादेव मेरे हृदय में विराजमान रहें।

विश्वज्ञ-परमात्मा का चिन्तन-

निषूदते यो भवदुःखजालं-निरीक्षते यो जगदन्तरालं ।

योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः-स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥(14)

May that Lord of Lords be enshrined in my heart, who destroys the trammels of the world who sees all that is inmost in universe, who, can be realised by the inner-self and who is seen by devotees.

भावार्थ- जो संसार के दुःखों के समूह को नष्ट करते हैं, जो ब्रह्माण्ड अन्तराल को (सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड) देखते हैं, जो योगियों के अन्तर्मन (अन्तःकां ध्यान) के द्वारा देखे जाते हैं/अनुभव किये जाते हैं, ऐसे देवों के देव मेरे हृदय विराजमान रहें।

प्राप्त शिक्षाएँ- जो सांसारिक दुःख (शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक/रोग/समस्या) को पूर्णतः नष्ट कर देते हैं, अनन्तज्ञानी होने से अणु से ले ब्रह्माण्ड (लोक+अलोक=विश्व+प्रतिविश्व), मूर्तिक-अमूर्तिक, चेतन-अचेतन, सूक्ष्म-स्थूल, दृश्य-अदृश्य पदार्थों को जानते हैं वे ही देव के देव (महाभगवान्, ईश्वर, परमात्मा, God, सर्वव्यापी) हैं। ऐसे भगवान् अमूर्तिक सच्चिदानन्द, सत्यं शिवं सुन्दरम्, ज्ञानघन स्वरूप होने से इन्द्रियगम्य-यन्त्र नहीं हैं, परन्तु ज्ञानगम्य/ध्यानगम्य हैं। अतः वे योगीगम्य/ध्यानीगम्य हैं।

गुणित मार्ग प्रतिपादक-परमात्मा का चिन्तन-
विमुक्ति मार्ग प्रतिपादको यो-यो जन्ममृत्यु व्यसनाद्यतीतः ।
त्रिलोक लोकी विकलोऽकलंकः-स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥(15)

May that Lord of Lords be enshrined in my heart, who has exhibited, the path O! Salvation who has passed beyond birth and death (which proceed sin), who sees the worlds and is body less and faultless.

भावार्थ- जो विमुक्तिमार्ग के प्रतिपादन करने वाले हैं, जो जन्म-मृत्यु-व्यसनाद्य से परे हैं, जो तीन लोकों को देखनेवाले हैं, शरीर से रहित हैं, दोषों से रहित हैं वे देवाधिदेव मेरे हृदय में विद्यमान रहें।

प्राप्त शिक्षाएँ- भगवान् मुक्तिमार्ग के उपदेशक होते हैं, भौतिक शरीर (पौरुषलिक-जैविक-रासायनिक, हड्डी-मांस-रक्त, स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-वजन) से रहित चेतनात्मक-अमूर्तिक स्वरूप वाला होने से जन्म-जरा-मृत्यु से रहित अपृत स्वरूप होते हैं, बिना इन्द्रिय-मन-यन्त्र के किन्तु अनन्तज्ञान से सम्पूर्ण ज्ञानाण्ड को केवल साक्षी रूप में जानते हैं, सम्पूर्ण दोषों (पशु-मानव-स्वर्ग के देव-नारकी सम्बन्धी सम्पूर्ण दोषों) से रहित होते हैं। ऐसे भगवान् के ध्यान से स्वरूप निहित आध्यात्मिक-शक्तियाँ/भगवत्-शक्तियाँ जागृत होती हैं।

सम्पूर्ण दोषों से मुक्त-परमात्मा का चिन्तन -

क्रोडीकृता शेष शरीरवर्गः-रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः ।

निरन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः-स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥(16)

May that Lord of Lords be enshrined in my heart, who is free from all passion like defects, which have encompassed all embodied-beings, who is wisdom personified, and is above all senses and Eternal.

भावार्थ- सम्पूर्ण शरीरधारी जीव अर्थात् कर्मबन्ध से युक्त संसारी जीव को आधीन करने वाले रागादिक दोष जिनके नहीं हैं, जो इन्द्रियों से रहित हैं, अपाय से रहित हैं, ज्ञानमय हैं, ऐसे महादेव मेरे हृदय में निवास करें।

प्राप्त शिक्षाएँ- दृश्यमान, ज्ञात जीवों में जो राग-द्वेषादि दोष हैं, उन दोषों का आरोप मोही-अज्ञानी-स्वार्थी-भयभीत जीव भगवान् में करता है जो यथार्थ से सत्य नहीं है। भगवान् भौतिक शरीर से रहित होने से शरीर जनित जन्म-मृत्यु-वृद्धत्व भी भगवान् में नहीं होता है। शरीराश्रित इन्द्रियाँ होने से भगवान् इन्द्रिय से रहित होने से इन्द्रियजन्य ज्ञान, भोग-उपभोग, दोष से रहित होते हैं। अतः भगवान् ब्रह्माण्ड के लिए, किसी भी जीव के लिए या स्वयं के लिए भी अपाय/हानिकारक नहीं होते हैं, किसी को भी कष्ट, दुःख, मृत्यु, नरक, शाप नहीं देते हैं, प्रलय-विघ्वास नहीं करते हैं।

विश्व व्यापक (विश्वज्ञ)-परमात्मा का चिन्तन-

यो व्यापको विश्वजनीन् वृत्तेः-सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलंविकारं-स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥(17)

May the Lord of Lords be enshrined in my heart, who being the source of universal good, is all pervading, is perfect, is all knowing, has destroyed all bonds of karma (action) and by contemplating upon whom all evil is annihilated.

भावार्थ- जो विश्व के लिए कल्याणकारी हैं, सिद्ध हैं, प्रबुद्ध हैं, कर्म मल को नाश करने वाले हैं, उनके ध्यान करने से सम्पूर्ण विकारों को नष्ट करते हैं, ऐसे देवों के देव हमारे हृदय में निवास करें।

प्राप्त शिक्षाएँ- जो भव्यात्मा स्वयं के सम्पूर्ण कर्म (द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्म) को समग्रता से मूलतः नाश कर देता है तब वह शुद्ध होकर के सिद्ध प्रबुद्ध होकर विश्व के लिए कल्याणकारी/आदर्श/पूजनीय बन जाता है। उन्हें

ध्यान से भी ध्यानी के सम्पूर्ण विकार नष्ट हो जाते हैं, ध्याता के विकार नष्ट होने से, स्वयं शुद्ध, बुद्ध, निर्विकार होने से भगवान् विश्व मंगलमूर्ति हैं/मंगलदाता है।

निर्दोष परमात्मा के शरणाश्रित -

न स्पृश्यते कर्मकलयदोषैः-यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः।
निरञ्जनं नित्यमनेक मेकं-तं देवमासं शरणं प्रपद्ये ॥(18)

I seek shelter in that Supreme Lord who cannot be touched by the contamination of karmic filth just as volumes of darkness cannot effect the strong-rayed sun and who is stainless, eternal, one and many.

भावार्थ- यथा घनान्धकार के समूह से भी सूर्य अस्पृश्य है, वैसे ही जो कर्मकलंक रूपी दोषों से अस्पृश्य है, जो निरञ्जन है, नित्य है, अनेक है, एक है, उस आप देव (प्रामाणिक, सर्वज्ञ, सत्य-हितोपदेशी देव) की शरण को प्राप्त करता हूँ।

प्राप्त शिक्षाएँ- यथा जो स्वयं तैर सकता है वह दूसरों को भी तार सकता है, जो दीपक स्वयं प्रकाशी है वह दूसरों को भी प्रकाशित कर सकता है। तथा ही जो स्वयं ही समर्थ/शक्ति सम्पन्न है वह दूसरों की रक्षा कर सकता है। ऐसा जो विश्वर निष्कलंक, समर्थ, प्रामाणिक, अनन्त गुण-पर्यायों से युक्त होने से एकानेक स्वरूप हैं वे ही शरण के योग्य हैं/तारणहार हैं/उद्धारक हैं। अतएव जो मङ्गल हैं, वे ही उत्तम हैं और वे ही शरणभूत हैं। अतः चत्तारि मङ्गलम्, चत्तारि लोगुत्तमा, चत्तारि शरणं पव्वज्जामि अर्थात् जो चार मङ्गल हैं वही उत्तम तथा वही शरणभूत (आश्रयदाता) हैं।

ग्रान-ज्योति-परमात्मा के शरणाश्रित -

विभासते यत्र मरीचिमाली-न विद्यमाने भुवनावभासि।
स्वात्मस्थितं बोधमय प्रकाशं-तं देवमासं शरणं प्रपद्ये ॥(19)

I seek shelter in that Supreme Lord, who centered in his own self, diffuses the light of wisdom and illuminates the universe in a manner that sun cannot.

भावार्थ- मैं उस परमदेव के आश्रय को प्राप्त करता हूँ जो स्वात्मस्थित, ज्ञानमय ज्योति से भुवन (लोक) को प्रकाशित करते हैं, जिसे सूर्य भी प्रकाशित नहीं कर सकता है।

प्राप्त शिक्षाएँ- परम अनन्त आध्यात्मिक ज्ञान ज्योति स्वरूप भगवान् स्वात्मा में ही लीन होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करते हैं जिसे करोड़ों-अरबों सूर्य भी नहीं कर सकते हैं।

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः ।

दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिकयत्र ॥(1) पु.सि.

Victory to that supreme light, where as it were in a mirror, is reflected the chain of all substances in all their infinite conditions.

वह प्रसिद्ध परम ज्योति जयवन्त हो। लोक-अलोक को प्रकाशित करने वाली लोक के लोचन स्वरूप अत्यन्त उत्कृष्ट निर्मल ज्योति होने के कारण केवलज्ञान ही परम ज्योति है। यह परम ज्योति ज्ञानमूर्ति है। यह ज्ञानात्मक परम ज्योति अष्ट कर्म से रहित होने के कारण तथा सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों से युक्त होने के कारण श्रेष्ठ है, निर्मल है, चैतन्य स्वरूप है। जयति अर्थात् सबसे उत्कृष्ट रूप में प्रवर्तन होती है।

जिसमें आत्मा समस्त ज्ञान, सुख, वीर्य, सिद्धत्व, निरोगत्व, अक्षय अव्याबाधत्व आदि गुण सादि अनन्त, अनादि अनन्त पर्यायों के साथ पदार्थों की मालिका/श्रृङ्खला नव पदार्थों की परम्परा सम्यक् रूप में युगपत्/एक साथ समग्रता रूप में प्रतिफलित/प्रतिबिम्बित होती है। जिस प्रकार आर्द्ध/दर्पण में योग्य द्रव्य-क्षेत्र में रहते हुए रूपी द्रव्य अर्थात् भौतिक वस्तु प्रतिबिम्बित होती है, उसी प्रकार अष्टकर्मों से रहित अचिन्त्य सामर्थ्य से युक्त परमज्योति में/परमब्रह्म में त्रिकालवर्ती सम्पूर्ण वस्तु समूह हस्तरेखा के समान प्रकाशमान होती हैं।

संपूर्णं तु समग्रं, केवलमसवत्त सब्वभावगयं ।
लोयालोयवितिमरं, केवलणाणं मुणेदब्वं ॥(460) गो.जी.214

यह केवलज्ञान, सम्पूर्ण, केवल, प्रतिपक्ष रहित, सर्व पदार्थगत और यह ज्ञान समस्त पदार्थों को विषय करने वाला है और लोकालोक के विषय में आवरण रहित है तथा जीव द्रव्य के जितने अंश हैं वे यहाँ पर सम्पूर्ण व्यक्त हो गए हैं। इसलिए उसको (केवलज्ञान को) सम्पूर्ण कहते हैं। मोहनीय और वीर्यान्तराय का सर्वथा क्षय हो जाने के कारण वह अप्रतिहत शक्ति युक्त है और निश्चल है अतएव उसको समग्र कहते हैं। इन्द्रियों की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता इसलिए केवल कहते हैं। चारों घातिकर्मों के सर्वथा क्षय से उत्पन्न होने के कारण वह क्रमकरण और व्यवधान से रहित है, फलतः युगपत् और समस्त पदार्थों को छान्ह करने में उसका कोई बाधक नहीं है, इसलिए उसको असपक्ष (प्रतिपक्ष रहित) कहते हैं।

असहायं स्वरूपोत्थं निरावरणमक्रमम् ।

घातिकर्मक्षयोत्पन्नं केवलं सर्वभावगम् ॥ (30) त.सा.पृ.15

जो किसी बाह्य पदार्थ की सहायता से रहित हो, आत्मस्वरूप से उत्पन्न हो, आवरण से रहित हो, क्रमरहित हो, घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुआ हो तथा समस्त पदार्थों को जानने वाला हो, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

आदा णाणपमाणं णाणं योग्यपमाणमुद्दिद्धं ।

णेयं लोयालोयं तम्हा णाणं तु सब्वगदं ॥ (23)

जैसे सूर्य या दीपक का एक निश्चित आकार होता है परन्तु उसका प्रकाश उस निश्चित आकार से भी अधिक फैलता है, प्रकाश फैलने पर भी सूर्य या दीपक फैलता नहीं है, परन्तु जहाँ तक उसका प्रकाश फैलता है उसका उतना क्षेत्र माना जाता है। जैसे एक चुम्बक और उसका चुम्बकीय क्षेत्र अलग-अलग होता है, चुम्बक का आकार छोटा और उसका चुम्बकीय क्षेत्र उसके आकार को धेरता हुआ बड़ा होता है। इसी प्रकार केवलज्ञानी के आत्मप्रदेश असंख्यात होते हुए भी उनका आकार अन्तिम शरीर के आकार के समान है। सिद्ध भगवान् का तो

आकार अन्तिम शरीर से भी कुछ कम है। कुछ केवली भगवान् मोक्ष के पहले चार प्रकार के समुद्रघात करते हैं। उसे केवली समुद्रघात कहते हैं। अन्तिम केवली समुद्रघात में उनके आत्मप्रदेश सम्पूर्ण 343 घन राजू प्रमाण लोकाकाश में व्याप हो जाते हैं। अन्य समय में उनके आत्मप्रदेश संसारावस्था में स्वदेह प्रमाण भी रहते हैं और सिद्धावस्था में चरमशरीर से किञ्चित् न्यून आकार में रहते हैं। परन्तु सर्वज्ञ भगवान् हर अवस्था में सम्पूर्ण लोकालोक को जानते हैं। इस कारण ज्ञानक्षेत्र/ज्ञेयक्षेत्र की अवस्था सर्वगत है किन्तु जो लोग भगवान् को शरीर की अपेक्षा भी सर्वगत मानते हैं वे सत्य-तथ्य से परे हैं। यदि भगवान् सर्वगत होते तो मलत्याग आदि अयोग्य क्रिया भी भगवान् के शरीर में ही होती जिससे भगवान् को ही अपवित्र कर देते और कष्ट देते। जैसे सूर्य के प्रकाश क्षेत्र में कोई कार्य करने पर वह सूर्य में नहीं होता वैसे भगवान् के ज्ञान क्षेत्र में ये क्रियाएँ होती हैं इसलिए भगवान् के शरीर में ये क्रियाएँ नहीं होती हैं। परमात्म प्रकाश में भी योगेन्द्र देव ने ज्ञान, ज्ञान विषय, ज्ञान क्षेत्र का वर्णन निम्न प्रकार किया है।

जसु अब्भंतरि जगुवसइ जग-अब्भंतरि जो जि ।

जगि जि वसंतु वि जगु जि ण वि मुणि परमप्पउ सो जि ॥

जिस आत्मराम के केवलज्ञान में संसार बस रहा है, अर्थात् प्रतिबिम्बित हो रहा है, प्रत्यक्ष भास रहा है और जगत् में वह बस रहा है अर्थात् सब में व्याप हो रहा है- वह ज्ञाता है और जगत् ज्ञेय है, संसार में निवास करता हुआ भी निश्चय नय कर किसी जगत् की वस्तु से तन्मय नहीं होता अर्थात् जैसे रूपी पदार्थ को नेत्र देखते हैं, तो भी उनसे अलग ही रहते हैं, इस तरह वह भी सबसे अलग रहता है, उसी को परमात्मा जानो।

शुद्ध शिवशान्त-परमात्मा के शरणापन्न-

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं-विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम् ।

शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं-तं देवमासं शरणं प्रपद्ये ॥(20)

I seek shelter in that Supreme Lord, having seen whom all universe becomes clearly and distinctly visible and separate,

who is pure, blissful and All-tranquillity, is without a beginning and without an end.

भावार्थ- जहाँ देखने पर यह विश्व स्पष्ट-प्रत्यक्ष रूप से भिन्न-भिन्न विद्या देता है, जो शुद्ध है, शिव है, शान्त है, शाश्वतिक है, उस आप-देव के आश्रय को स्वीकार करता हूँ।

प्राप शिक्षाएँ- जिसके अनन्त केवलज्ञान में सम्पूर्ण लोकालोक (ब्रह्माण्ड-प्रतिब्रह्माण्ड) स्पष्ट रूप से/भिन्न-भिन्न द्रव्य-गुण-पर्याय रूप से प्रतिभासित होता है तथा जो शुद्ध है, शिव (मंगलमय, पवित्र) है, शान्त है (सम्पूर्ण क्षोभ, विपलव, गति-आगति, सञ्चरण आदि से परे) आदि-अन्त से रहित अविनाशी है ही यथार्थ से ईश्वर, सर्वेश्वर है। ऐसे ही प्रभु-विभू यथार्थ से आश्रयदाता है अतः उनका ही आश्रय ग्रहण करने योग्य है।

सर्व दोष रहित-परमात्मा के शरणापन्न -

येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा-विषाद निद्रा भय शोक चिन्ता ।

क्षयोऽनलेनेव तरुप्रपञ्च-स्तं देवमासं शरणं प्रपद्ये ॥(21)

I seek shelter in that Supreme Lord, who has annihilated desire, pride, delusion, anguish, sleep, fear, sorrow, anxiety, just as a jungle is burned up by the wild fire.

भावार्थ- यथा अग्नि के द्वारा वृक्षों के समूह नष्ट हो जाते हैं तथा जिसके द्वारा काम वासना, अहंकार, मूर्च्छा (आसक्ति, तृष्णा), विषाद (दुःख), निद्रा, भय, शोक, चिन्ता आदि नष्ट किये गये हैं, ऐसे विजितात्मा देव का आश्रय प्राप करता हूँ।

प्राप शिक्षाएँ- उपरोक्त श्लोक संख्या 12 से 21 तक से यह सिद्ध होता है, यथार्थ से इष्टदेव-महादेव-ईश्वर-भगवान्-आपदेव-आत्मदेव वे हैं, जो सम्पूर्ण कर्म से रहित हो, पवित्र हो, अनन्त ज्ञानादि वैभव से युक्त हो, स्व-आत्म ही लीन हो, परम स्वतन्त्रता/मोक्ष का उपदेशक हो। ऐसा देव ही पूजनीय,

मान्य, तरण-तारण है।

आसेनोच्छन्न दोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्यासता भवेत् ॥(5)

नियम से आस को दोष रहित, सर्वज्ञ और आगम का स्वामी होना चाहिए। क्योंकि अन्य प्रकार से आसपना नहीं हो सकता।

सर्व दोषों से रहित होने पर एवं आध्यात्मिक गुणों से सहित जीव आस है, भले उसका नाम कुछ भी हो। गुणग्राही आदर्श व्यक्ति गुण चाहता है और उस गुण की पूजा करता है, न कि व्यक्ति की न ही मूर्ति की। आचार्य अकलंक देव ने कहा है-

यो विश्वं वेद वेद्यं जनन जलनिधेभिन्नः पारदृशवा,
पौर्वार्प्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलयं यदीयम् ।

तं वंदे साधुवंद्यं सकल गुण निधि ध्वस्तदोषद्विषन्तं,
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदल निलयं केशवं वा शिवं वा ॥(9)

- अकलङ्क स्तोत्र

जो विश्व के सम्पूर्ण ज्ञान को जान लिया अर्थात् विश्व विद्या विशारद है। जो जन्म-जरा-मरण रूपी समुद्र को नष्ट कर लिया, पार कर लिया। जिनके वचन पूर्वापर विरोध से रहित, सम्पूर्ण दोषों से रहित, उपमा रहित है, सम्पूर्ण गुणों की खान स्वरूप समस्त दोषों को ध्वस्त कर दिया और साधुओं से भी वन्दनीय ऐसी आत्मा को वन्दना है, भले ऐसे गुण सहित बुद्ध हो, महावीर हो, वर्द्धमान हो, ब्रह्मा हो, विष्णु हो या शिव हो। हरिभद्र सूरी ने लोकतत्त्व निर्णय में कहा है-

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेष कपिलादिषु ।

युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

मेरा वीर जिनेन्द्र में पक्षपात नहीं है, एवं कपिलादि में द्वेष नहीं है किन्तु जिसका वचन युक्तियुक्त, तर्क सङ्गत, परस्पर अविरोध, इहलोक और परलोक का हितकारी है, उन्हीं का वचन ग्रहण करने योग्य है, अन्य का नहीं।

प्रश्न होता है कि ऐसे महान् पुरुषों की वन्दना क्यों करनी चाहिए ? इसका उत्तर यह है कि उनके गुणों की उपलब्धि के लिए, उनके गुण स्मरण के लिए, वित्तज्ञता ज्ञापन करने के लिए। कहा भी है-

अभिमत फलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः,
स च भवति सुशास्त्रात् तस्य चोत्पत्तिरासात् ।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्बुद्धैः,
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥

इष्टफल की सिद्धि का उपाय सम्यग्ज्ञान है। सो सम्यग्ज्ञान यथार्थ आगम से होता है। उस आगम की उत्पत्ति आस (देव) से है, इसलिए वह आस (देव) पूज्यनीय है, जिसके प्रसाद से तीव्र बुद्धि होती है। निश्चय से साधु-लोग अपने ऊपर किये गये उपकार को नहीं भूलते हैं।

श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः ।
इत्याहुस्तदगुण स्तोत्रं शास्त्रादौ मुनि पुङ्गवाः ॥

मोक्षमार्ग की सिद्धि परमेष्ठी भगवान् के प्रसाद से होती है, इसलिए मुनियों में पूज्य, शास्त्र के आदि में उनके गुणों की स्तुति करते हैं।

स्तुति करने का मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक कारण पूज्यपाद स्वामी ने कहा है-

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः ।
ददाति यस्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वचः ॥(23) इष्टोपदेश

अज्ञानी की उपासना से अज्ञान की उपलब्धि होती है और ज्ञानी की उपासना ज्ञान की उपलब्धि होती है क्योंकि जिसके पास जो वस्तु होती है वही वस्तु वह दूसरों को दे सकता है अन्य को नहीं।

अपने आत्मा से भिन्न अरिहन्त, सिद्ध, परमात्मा की उपासना, आराधना करके आत्मा उनके समान परमात्मा बन जाती है। जैसे- दीपक से भिन्न बत्ती दीपक की उपासना करके यानी साथ-साथ रहकर दीपक के समान प्रकाशमान बन जाती है।

येन भावेन तद्रूपं ध्यासेतमात्मानमात्मवित् ।

तेन तन्मयता याति सोपधिः स्फटिको यथा ॥ की है इस

जिस भाव से जिस प्रकार यह आत्मा का ध्यान करता है उस स्वरूप हो जाता है। जैसे- स्फटिक मणि विभिन्न रङ्गों के सम्पर्क से उस वर्ण रूप परिणमन करता है।

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति ।

अर्हत्थ्यानविष्टो भवार्हन् स्यात् स्वयं तस्मात् ॥

यह आत्मा जिस भाव से परिणमन करता है, वह उस स्वरूप हो जाता है। अर्हत् के ध्यान सहित ध्याता स्वयं अर्हत् रूप हो जाता है।

आचार्य कुन्दकुन्द देव ने प्रवचन सार में भी प्रकारान्तर से इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। यथा-

जो जाणदि अरहंतं दब्वत्तगुणत्पञ्जयत्तेहिं ।

सो जाणदि अप्याणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥ (80)

जो कोई अरहन्त भगवान् के द्रव्यपने, गुणपने तथा पर्यायपने को जानता है, वह पुरुष अरहन्त के ज्ञान के पीछे अपने आत्मा को जानता है। उस आत्मज्ञान के प्रताप से उस पुरुष के दर्शनमोह का निश्चय से क्षय हो जाता है।

सब्वे वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा ।

किच्चा तधोवदेसं णिब्वादा ते णमो तेसिं ॥(82)

सब ही अरहन्त उसी विधि से कर्माशों का क्षय करके और उसी प्रकार उपदेश को करके वे निर्वाण को प्राप्त हुए, उनके लिए नमस्कार हो।

आत्मशुद्धि के उपाय : कषायादि से मुक्ति -

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी-विधानतो नो फलको विनिर्मितः ।

यतो निरस्ताक्षकषाय विद्विषः-सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥(22)

Neither a cushion of grass, nor wooden plank, neither a slab of stone, nor piece of ground, has been prescribed for

purposes of meditation. That Atma itself which has subdued its foe-passions and sense desires has by wise men been said to be the pure seat.

भावार्थ- समाधि साधना के लिए नियम से पाषाण संस्तर, तृण संस्तर, पृथ्वी संस्तर, फलक निर्मित संस्तर साधक नहीं है क्योंकि उत्तम धी वालों ने अन्द्रिय और कषाय रूपी शत्रु को परास्त करने वाले सुनिर्मल आत्मा को ही माना गया है।

प्राप्त शिक्षाएँ- समाधि के लिए बाह्य भौतिक संस्तर साधकतम नहीं है अपितु भाव की पवित्रता से आत्मा में लीनता/स्थिरता आती है, वह ही यथार्थ से साधि है।

बाह्य वासना त्याग से आत्मलीनता -

न संस्तरो भद्र ! समाधिसाधनं-न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।

पतस्तोऽध्यात्मरतो भवानिशं-विमुच्च सर्वामपि बाह्यवासनाम् ॥(23)

No seat, my good friend, is necessarily essential for attaining communion, and neither world homage, nor group-meetings are required, giving up all desire for the external, and being incessantly absorbed in Thy own self, in every possible way.

भावार्थ- हे भद्र ! जो हेतु समाधि का साधन न संस्तर है, न ही लोकपूजा-प्रसिद्धि है, न ही संघ मेलन है, अतएव समस्त बाह्य वासनाओं को छोड़कर सतत आध्यात्म में रत रहो।

प्राप्त शिक्षाएँ- भले समाधि के लिए बाह्य साधक रूप में योग्य संस्तर, विषयपक आचार्य (समाधि में सहयोगी आचार्य), चतुर्विध संघ का मिलन, आदि गायत्रोगी हो तथापि प्रमुख अन्तरङ्ग उपादान आत्मा में लीन होना ही है। हाँ आत्मलीनता के यदि बाह्य साधक सहयोगी है तो उसे निमित्त कारण रूप में माना गया, अन्यथा नहीं। गुण की पूजा-प्रशंसा-प्रसिद्धि होगी ही/होती है तथापि विषयपक को इससे निर्लिप्त होना चाहिए।

स्वास्थ्य-मुक्ति के लिए बाह्यासक्ति त्याग -

न सन्ति बाह्या मम केचनार्थः-भवामि तेषां न कदाचनाहम् ।

इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं-स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यै ॥(24)

"No external objects are mine, May I never be theirs" Determine this and break connection with the external, and O good friend ! if thou wishest to secure Deliverance; be always centred in Thy-self.

भावार्थ- हे भद्र ! कोई भी बाह्य पदार्थ मेरे नहीं हैं, मैं कभी भी उनका नहीं हूँ इस प्रकार सुनिश्चित करके मुक्ति के लिये बाह्य को छोड़कर तुम सदा स्वयं में स्थिर हो जाओ ।

प्राप्त शिक्षाएँ- मोह ममत्व आसक्ति के कारण जीव जिसके प्रति मोहादि है उसके प्रति आकर्षित होता है, उसके ममत्व में बन्ध जाता है, उसके संयोग से आसक्ति होती है वियोग से दुःख होता है । इस प्रकार ममत्व से संयोग-वियोग सम्बन्धी आर्त-रौद्र ध्यान होता है, जिससे भाव की अस्थिरता-मलिनता होती है जिससे समाधि संभव ही नहीं है । अतः समाधि के लिये निर्मोही, साम्यभावी, एकाग्रमना होना चाहिये ।

आत्मलीनता से समाधि-

आत्मानमात्मन्यवलोकमानः-त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः ।

एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र-स्थितोपि साधुर्लभते समाधिम् ॥(25)

Thou, who seest thyself in thyself, are pure and possessed of sight and wisdom, A sage who contemplates his mind, attains communion howsoever situated.

भावार्थ- जो साधु साधक स्वयं को विशुद्ध ज्ञान दर्शनमय स्वरूप निश्चय कर स्वात्म में आत्मा को अवलोकन करते हुए निश्चय से यत्र-तत्र भी एकाग्र चित्तवाला होता है वह समाधि को प्राप्त करता है ।

प्राप्त शिक्षाएँ- स्व आत्मा में लीन होना ही यथार्थ से समाधि है । स्वशुद्धात्मा का स्वरूप विशुद्ध ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि अनन्त गुणधर्मादिमय है । अतः जहाँ भी जब भी स्व-आत्मा के द्वारा आत्मा में एकाग्र/स्थिर/लीन होना ही समाधि है । इस समाधि के द्वारा ही समस्त कर्म तथा कर्मजनित अवस्थायें तथा दुःखों को नष्ट करके मोक्ष प्राप्त किया जाता है । आध्यात्मिक मनोविज्ञान (इष्टोपदेश) में आचार्य पूज्यपाद ने कहा भी है-

इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्,
मानापमानसमतां स्वमताद् वितन्य ।
मुक्ताग्रहो विनिवसन्सजने वने वा,
मुक्तिश्रियं निरूपमामुपयाति भव्यः ॥(51)

The wise Bhavya who has well understood the teaching of the "Istopdesha" and who maintains the serenity of the mind by the effort of his well when he is respected as well as when disrespect is shown to him, and who has tred himself from the attachment to the non-self, obtains the matchless treasure of Moksha, whether he live in a city or in a trust!

इष्ट अर्थात्, अभिप्रेत जो सुख उसको कारणभूत जो मोक्ष है उसके उपाय होने के कारण स्व आत्मा का ध्यान उसका यथावत् कथन इस इष्टोपदेश शास्त्र से सम्यक् रूप से अर्थात् व्यवहार निश्चय रूप से अध्ययन करके, चिन्तवन करके धीमान् हिताहित परीक्षा में दक्ष भव्य अर्थात् जो अनन्त ज्ञानादि आविर्भाव करने के लिए समर्थ ऐसा जीव निरूपम अनन्त ज्ञानादि सम्पत्ति स्वरूप मुक्तिश्री को प्राप्त करता है ऐसी मुक्तिश्री को प्राप्त करने वाले भव्य आग्रह से रहित होकर धीमादि में या वन में विधिपूर्वक निवास करता हुआ मान-अपमान में समता रखता है, राग और द्वेष से दूर रहता है । अर्थात् जो इष्टोपदेश ग्रन्थ को अध्ययन चिन्तन करके आत्मज्ञान को प्राप्त करके समस्त आग्रहों को त्यागकर वन या नगर में निवास करते हुए समस्त मान-अपमान में समता रखता हुआ राग द्वेष से रहित होता हुआ मुक्ति लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है ।

आत्म ज्ञान के लिये तथा मुक्ति प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक ग्रन्थों का तो अध्ययन करना चाहिये परन्तु केवल अध्ययन से मुक्ति नहीं मिल जाती है। जब तक आध्यात्मिक ग्रन्थ में प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार आचरण नहीं किया जाता है। शास्त्र अध्ययन का फल है समस्त वैभाविक भाव को त्याग कर के साम्यभाव को धारण करते हुए वीतरागी बनना है। इसलिये पूज्यपाद स्वामी ने समाधि शतक में कहा भी है-

**‘यदा मोहात्प्रजायेते, राग द्वेषौ तपस्विनः ।
तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं साम्येतः क्षणात् ॥’** (समाधिशतकम्)

जिस समय तपस्वियों को राग द्वेष उत्पन्न हो जावे उस समय स्वयं को स्व आत्मा में स्थापित करके आत्मा के शुद्ध स्वरूप का ध्यान करना चाहिये, जिससे क्षणभर में राग द्वेष शान्त हो जावें। जिस प्रकार अग्नि के संयोग से दूध में उफान आता है और उस उफनते हुए दूध में पानी डालने से उफान शान्त हो जाता है उसी प्रकार रागद्वेष रूपी अग्नि से जब आत्मा में विक्षोभ उत्पन्न होता है उस समय में शुद्ध आत्मा स्वरूप रूपी चिन्तनमय जल से उसे शान्त करना चाहिये। कहने के लिये यह प्रक्रिया सहज और सरल लगती है परन्तु प्रायोगिक प्रक्रिया इसकी बहुत ही लम्बी एवं जटिल है। आत्मस्वरूप को प्राप्त करने के लिये जिस प्रक्रिया की आवश्यकता पड़ती है उसका विस्तृत वर्णन आत्मानुशासन में निम्न प्रकार से किया गया है-

विषयविरतिः संगत्यागः कषायविनिग्रहः ।

शमयमदमास्तत्त्वाभ्यासस्तपश्चरणोद्यमः ।

नियमितमनोवृत्तिर्भक्तिर्जिनेषु दयालुता ।

भवतिकृतिनः संसारब्धेस्तटे निकटे सति (224)

इन्द्रिय विषयों से विरक्त, परिग्रह का त्याग, कषायों का दमन, राग-द्वेष की शान्ति, यम-नियम, इन्द्रिय दमन, सात तत्वों का विचार, तपश्चरण में उद्यम, मन की प्रवृत्ति पर नियंत्रण, जिन भगवान में भक्ति और प्राणियों पर दया भाव; सब गुण उसी पुण्यात्मा जीव के होते हैं जिनके कि संसार रूपी समुद्र का किनारा निकट में आ चुका है।

**यमनियमनितान्तः शान्तबाह्यान्तरात्मा,
परिणमितसमाधिः सर्वसत्वानुकम्पी ।
विहितहितमिताशी कलेशजालं समूलं,
दहन्ति निहितनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः ॥ (225)**

जो यम-यावज्जीवन किये गये ब्रत, तथा नियम में-परिमित काल के लिये धारण किये गये ब्रत में उद्यम है, जिनकी अन्तरात्मा (अन्तःकरण) बाह्य इन्द्रिय विषयों से निवृत्त हो चुकी है, जो ध्यान में निश्चल रहता है, सब प्राणियों के विषय में दयालु है, आगमोक्त विधि से हितकारक (पथ्य) एवं परिमित भोजन को ग्रहण करने वाला है, निद्रा से रहित है, तथा जो अध्यात्म रहस्य को जान चुका है ऐसा जीव समस्त क्लेशों के समूह को जड़मूल से नष्ट कर देता है।

समाधिगतसमस्ताः सर्वसावद्यदूराः ।

स्वहितनिहितचित्ताः शान्तसर्वप्रचाराः ।

स्वपरसफलजल्पाः सर्वं संकल्पमुक्ताः ।

कथमिह न विमुक्ते भर्जिनं ते विमुक्ताः ॥ (226)

- आत्मानुशासन

जो समस्त हेय-उपादेय तत्व के जानकार हैं, सर्व प्रकार की पाप क्रियाओं से रहित हैं, आत्महित में मन लगाकर समस्त इन्द्रिय व्यापार को शान्त करने वाले हैं, स्व और पर के लिये हितकर वचन का व्यवहार करते हैं, तथा सब संकल्प विकल्पों से रहित हो चुके हैं; ऐसे वे मुनि यहाँ कैसे मुक्ति के पात्र न होंगे? अवश्य होंगे।

स्व-शुद्धात्मा से भिन्न है कर्मज उपलब्धियाँ -

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा-विनिर्मलः साधिगम स्वभावः ।

हिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता-न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥ (26)

My self is ever one, Eternal, pure, and all knowing in its essence. All the rest are all outside me, non-eternal and brought about as results of one's own karmas.

भावार्थ – मेरा आत्मा सदा एक है, शाश्वत है, पवित्र है, ज्ञान स्वभावी है, अन्य सम्पूर्ण बाह्य में उत्पन्न होने वाले हैं वे सब कर्म से उत्पन्न हैं, वे सब अपने नहीं हैं, शाश्वतिक नहीं हैं।

प्राप्त शिक्षाएँ – ब्रह्माण्ड में अनन्तानन्त जीव है और प्रत्येक जीव स्वतंत्र-स्वतंत्र सत्ता वाला है। इसलिए तो कोई एक मरने पर ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण जीव नहीं मरते हैं, एक जीव जन्म लेने पर सम्पूर्ण जीव जन्म नहीं लेते हैं, ऐसा ही सुख-दुःख भाव-व्यवहार में भी जान लेना चाहिए। जीव द्रव्य/ सत्य हांने से अनादि अनन्त काल से है और अनन्त भविष्य तक होने से शाश्वत है। शुद्ध जीव शरीर-इन्द्रिय-मन-मस्तिष्क-मोह-राग-द्रेष-कामादि भाव से रहित होने से निर्मल-अमूर्तिक-पवित्र है, ज्ञान स्वरूप ही आत्मा (जीव) है। अतः जीव की उत्पत्ति कोई निश्चित कालावधि में किसी निश्चित भौतिक-रासायनिक प्रक्रिया से उत्पन्न होकर मरने के बाद नाश होने वाला नहीं है। जन्म-मरण, सांसारिक विभिन्न अवस्थायें, सम्बन्ध, सुख-दुःख आदि कर्मज हैं। कर्म सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले हैं। जैसा हि आकाश का दृश्यमान आकार-रूप-रंग आदि शुद्ध आकाश नहीं है परन्तु भौतिक-तत्व के संयोग से है वैसा ही शुद्धात्मा से भिन्न समस्त भाव-व्यवहार-अवस्थायें-शरीर-राग-द्रेष-ज्ञान आदि कर्म संयोग से उत्पन्न हुए हैं।

भौतिक-कर्मज आत्मा से भिन्न-

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि साध्दे-तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः।

पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः-कुतोहि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ॥ (27)

How can he, who is not one even with his own body, be connected with his son, wife, friends, when the skin is removed from the body, where would the pores remain.

भावार्थ – जिसका शरीर के साथ भी एकत्व नहीं है उसका पुत्र, स्त्री और मित्रों के साथ क्या एकत्व है ? चमड़ी के पृथक करने पर शरीर में बालों के छिपे निश्चय से किस प्रकार रह सकते हैं ? अर्थात् निश्चय से बालों के छिपे नहीं रह सकते हैं ?

प्राप्त शिक्षाएँ – शरीर का निर्माण माता के रज-वीर्य एवं कर्म (नो कर्म) के उदय से होता है। रज-वीर्य एवं कर्म पौद्वलिक (भौतिक-रासायनिक) है जब कि आत्मा (शुद्धात्मा) अमूर्तिक-चैतन्य (ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य-आध्यात्मिक शक्ति) स्वरूप है। इस दृष्टि से शरीर से विजातीय द्रव्य आत्मा होने से शरीर से पृथक आत्मा है। शरीर से सम्बन्धित माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, भाई-बन्धु, शूषु-मित्र आदि तक तो पृथक/भिन्न/अलग हैं ही। जैसा कि चर्म को शरीर से अलग करने से बाल के छिपे भी अलग हो जाते हैं क्योंकि वह छिपे चर्म के आश्रय से होते हैं वैसा ही शरीराश्रित माता-पितादि भी आत्मा से भिन्न हैं। अतः शरीर के समान ही माता पितादि के प्रति मोह/ममत्व/राग/एकत्व भाव नहीं रहना चाहिये।

यद्यपि संसारावस्था में व्यवहार नय से जीव एवं शरीर तिल-तैल, दूध-घी, दूध-पानी के जैसे एकमेक सा हो रहे हैं (लग रहे हैं) तथापि शुद्ध निश्चय से तात्त्विक दृष्टि से भिन्न-भिन्न है। ऐसा श्रद्धान-विवेक रखते हुए यथा योग्य स्व शरीर तथा शरीर से युक्त जीवों के प्रति आध्यात्मिक-साधना के अनुकूल भाव-व्यवहार करना चाहिये अर्थात् शरीर को स्वस्थ रखते हुए आध्यात्मिक साधना तथा माता-पितादि से वात्सल्य/साम्य भाव/आत्म भाव रखते हुए आत्म कल्याण करना चाहिये। न राग न द्रेष, न आसक्ति, न वैरत्व भाव होना चाहिये। क्योंकि यह सब भाव व्यवहार अनात्म होने से इससे कर्म बन्ध होता है जिससे संसार में परिभ्रमण करते हुए दुःख भोगना पड़ता है।

श्यामो गौरः कृशः स्थूलः काणः कुण्ठोऽबलो बली।

वनिता पुरुषः षण्ढो विरुपो रूपवानहम् ॥ (59) अ. श्रावकाचार

जो अपने को मैं काला हूँ, मैं गोरा हूँ, मैं पतला हूँ, मैं मोटा हूँ, मैं काणा हूँ, मैं विकलाङ्ग हूँ, मैं निर्बल हूँ, मैं सबल हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं नपुंसक हूँ, मैं कुरुप हूँ, मैं रूपवान हूँ।

जात देहात्म विभ्रान्तेरेषा भवति कल्पना।

विवेकं पश्यतः पुंसो न पुनर्देहदेहिनोः ॥ (60)

इस प्रकार(उपरोक्त प्रकार से) शरीर में आत्मा की भ्रान्ति वाले जिस पुरुष की कल्पना होती है और जिसे देह और देही (जीव) का भेद दिखाई नहीं देता, उसे बहिरात्मा कहते हैं। किन्तु जिसे देह और देही का भेद दिखाई देता है, ऐसे सम्यादृि पुरुष के उक्त प्रकार की कल्पना नहीं होती है।

शत्रु मित्र पितृ भ्रातृमातृकान्ता सुतादयः ।

देह सम्बन्धतः सन्ति न जीवस्य निसर्गजाः ॥ (61)

देह (शरीर) का अपकार करने वाला सो शत्रु व देह का उपकार करने वाला सो मित्र और देह को उत्पन्न करने वाला सो पिता, और जहाँ देह की उत्पत्ति वहाँ ही जिसकी उत्पत्ति होती है वह भाई (सहोदर), देह को उत्पन्न करे सो माता, देह को जो रमावे सो स्त्री, देह से उत्पन्न सो पुत्र आदि सभी सम्बन्ध जीव के देह के संसर्ग से हैं, स्वाभाविक (नैसर्गिक) नहीं हैं।

श्वाभ्रस्तिर्यङ्गनरो देवो भवामीति विकल्पना ।

श्वाभ्रतिर्यङ्गनृदेवाङ्ग सङ्गतो न स्वभावतः ॥ (62)

मैं नारकी हूँ, मैं तिर्यज्व हूँ, मैं मनुष्य हूँ और मैं देव हूँ, यह कल्पना नारकी, तिर्यज्व, मनुष्य और देवगति के शरीर के संग से होती है, स्वभाव से नहीं है।

बालकोऽहं कुमारोऽहं तरुणोऽहमहं जरी ।

एता देहपरीणामजनिताः सन्ति कल्पनाः ॥ (63)

मैं बालक हूँ, मैं कुमार हूँ, मैं जवान हूँ, मैं बूढ़ा हूँ, ये सब कल्पनाएँ देह के परिवर्तन से उत्पन्न होती हैं।

विदाधः पण्डितो मूर्खो दरिद्रः साधनोऽधनः ।

कोपनोऽसूयको मूढो द्विष्टस्तुष्टोऽशठः शठः ॥ (64)

सज्जनो दुर्जनो दीनो लुब्धो मत्तोऽपमानितः ।

जात चित्तात्मसम्भान्तेरेषा भवति शेषुषी ॥ (65)

मैं चतुर हूँ, विद्वान हूँ, मूर्ख हूँ, दरिद्र हूँ, धनिक हूँ, निर्धन हूँ, क्रोधी हूँ, इर्ष्यालु हूँ, मूढ़ हूँ, द्वेषी हूँ, सन्तुष्ट हूँ, ज्ञानी हूँ, अज्ञानी हूँ, सज्जन हूँ, दुर्जन हूँ

दीन हूँ, लोभी हूँ, उन्मत्त हूँ, अपमानित हूँ, ऐसी बुद्धि रूप कल्पना चित्त में आत्मा की भ्रान्ति वाले पुरुष के होती है।

देहे यात्ममतिर्जन्तोः सा वर्द्धयति संसृतिम् ।

आत्मन्यात्ममतिर्या सा सद्यो नयति निर्वृतिम् ॥ (66)

जीव की शरीर में जो आत्मबुद्धि होती है, वह संसार को बढ़ाती है। किन्तु आत्मा में जो आत्मबुद्धि होती है, वह शीघ्र ही मुक्ति को ले जाती है।

यो जागत्याऽत्मनः कार्ये कायकार्यं स मुथति ।

यः स्वपित्यात्मनः कार्ये कायकार्यं करोति सः ॥ (67)

जो पुरुष आत्मा के कार्य में जागता है, वह शरीर के कार्य को छोड़ता है। किन्तु जो आत्मा के कार्य में सोता है, वह शरीर के कार्य को करता है।

दुःखदायी संयोग सर्वथा त्यजनीय -

संयोगतो दुःखमनेकभेदं-यतोऽशनुते जन्मवने शरीरी ।

ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो-यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥ (28)

The self, encased in the body, undergoes various sorts of sufferings; Because of this external connection. Therefore he who desires Deliverance of the self should avoid this corporal contact through mind, speech and action.

भावार्थ - क्योंकि संसारी जीव संसार रूपी वन में संयोग कारण अनेक प्रकार के दुःख को प्राप्त करता है इसलिए आत्मा के उद्धारक, मोक्ष के इच्छुक पुरुष को इनको तीन प्रकार से छोड़ देना चाहिए।

प्राप्त शिक्षाएँ - भाव कर्म (मोह-राग-द्वेषादि) के संयोग से द्रव्यकर्म (ज्ञानावरणादि ८ कर्म) का संयोग होता है तथा द्रव्य कर्म के कारण शरीर, माता-पितादि चेतन, धन-सम्पत्ति आदि अचेतन तथा अलंकार-वस्त्र-धनादि से युक्त पुत्रादि भाई-बन्धु आदि मिश्र परिग्रहों (संयोग) को मन-वचन-काय से अर्थात् मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमत के गुणन रूप ९ कोटि/भेद से त्याग देना चाहिए। क्योंकि-

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम् ।

अतएव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः ॥ (45)

आचार्य श्री ने इस श्लोक में सुख का आधार तथा उसे प्राप्त करने का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित उपाय बताया है। उन्होंने यह बताया है कि दुःख आत्मा का स्वरूप नहीं है तथा सुख दूसरों से प्राप्त नहीं होता है वरन् दुःख पर का स्वभाव है तथा सुख स्व-स्वभाव है। जो सुख के लिए दूसरों को/अनात्म स्वरूप को अपनाता है वह सुख के परिवर्तन में दुःखों को गले लगाता है। इसके विपरीत जो पर संयोग का त्याग करके आत्मा का ही आश्रय लेता है, आलम्बन लेता है, वह सुख को प्राप्त करता है। इसका रहस्य यह है कि शुद्ध, स्वतन्त्र आत्मा का स्वरूप ही अक्षय अनन्त सुख स्वरूप है तथा शरीरादि पौद्वलिक द्रव्य हैं, जिनमें सुख का सर्वथा अभाव है। उसका स्वीकार रूप में जो मोह, राग है वह दुःख के निमित्त है। क्योंकि उसके कारण जो कर्मबन्ध होता है उससे आत्मा परतन्त्र हो जाता है और सुखादि गुण भी दुःख रूप में परिगमन कर लेते हैं परन्तु भेद-विज्ञान तथा भेद क्रिया रूप वीतराग चारित्र से पर सम्बन्ध रूप बन्धन कट जाता है तब आत्मा के सुखादि गुण प्रकट हो जाते हैं। इसे ही स्वतन्त्रता/निःसंगत्व/स्वाधीन कहते हैं।

अर्थात् शरीर, वैभव, सत्ता, सम्पत्ति, प्रसिद्धि, परिवार, शत्रु-मित्र, राग-द्रेष, काम-क्रोध आदि पर है, अनात्मा है, पर-आत्मा है। अतः उनसे स्वयं को सुख प्राप्त नहीं हो सकता है, किन्तु उनके प्रति जो राग-द्रेष, ममत्व, आकर्षण-विकर्षण रूपी संक्लेश है उससे दुःख ही प्राप्त होगा, इससे भिन्न जो शुद्ध आत्मस्वरूप है वह सुखस्वरूप होने से उसकी उपलब्धि से सुख की उपलब्धि होती है, इसलिए महात्मा पुरुष स्व-आत्म-उपलब्धि अर्थात् स्व-हित के लिए पुरुषार्थ करते हैं। नारायण कृष्ण ने भी कहा है-

प्रशान्तमसं ह्येनं योगिनः सुखमुत्तमम् ।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ (27) गीता पृ.76

जिसका मन भलीभाँति शान्त हुआ है, जिसके विकार शान्त हो गए हैं, ऐसा

ब्रह्मय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युज्जत्रेवं सदात्मानं योगी विगत कल्मषः ।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमशनुते ॥ (28)

आत्मा के साथ अनुसन्धान करते हुए पाप-रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्म प्राप्ति-रूप अनन्त सुख का अनुभव करता है।

विकल्प त्याग से परमात्म लीनता -

सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं-संसारकान्तारनिपात हेतुम् ।

विविक्त मात्मानमवेक्ष्यमाणो-निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥ (29)

Liberate thyself from the trammels of doubt through which thou art lost in this world forest. Realise thyself as separate and absorbed in contemplation of the highest self.

भावार्थ- संसार वन में पतन के हेतुभूत सम्पूर्ण विकल्प जालों को दूर करके एकमात्र आत्मा को देखते हुए तुम परमात्म तत्त्व में लीन हो जाओ।

प्राप्त शिक्षाएँ- संकल्प, विकल्प, संक्लेश से आत्मप्रदेश में कम्पन होता है, जिससे तनाव/पीड़ा होती है, पाप कर्म का आस्रव-बन्ध होता है। इसके कारण ही जीव चतुर्गति रूपी संसार में 84 लाख योनियों में परिभ्रमण करते हुए अनेक शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक दुःखों को अनुभव करता है। अतः आध्यात्मिक सुख के इच्छुक महामानव स्व-सम्बोधन/आत्म-विश्लेषण/आत्म-संशोधन को सर्वाधिक महत्व देता है।

अयि कथमपि मृत्वा तत्वकौतूहली सन् ।

अनुभव भव मूर्तेः पाश्वर्वर्ती मुहूर्तम् ।

पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य ।

येन त्यजसि झगति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम् ॥ (अमृत कलश)

हे शान्ति के इच्छुक आत्मन्! तत्त्व कौतूहल आदि किसी प्रकार से मरकर भी स्व-विज्ञान घनस्वरूप आत्म-तत्त्व को मोह, माया, शोक, दुःख से मुहूर्त मात्र

के लिए अलग अनुभव करो और जब ऐसा अनुभव करो तो तत्काल स्व-शुद्ध आत्मा से भिन्न भौतिक/अनात्म/विकारभूत मोहादि को हठात् त्याग कर दो, इससे तुम निर्मल/पवित्र आनन्द ध्यान स्वरूप हो जाओगे।

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम् ।
हृदय सरसि पुंसः पुद्गलदभिन्नधामनो ननु किमनुपलब्धिर्भाति किञ्चोपलब्धिः ॥

हे आत्मन् ! संसार के अकार्य कोलाहल से विराम लो। स्वयं ही समस्त संकल्प-विकल्पों से अवकाश प्राप्त करके स्व-आत्मस्वरूप का अवलोकन/अनुभव करो। तब स्वयं को अनुभव हो जाएगा कि तुम्हारा चैतन्य शुद्ध-स्वरूप समस्त भौतिक स्वरूप से भिन्न है या नहीं ? अर्थात् निश्चय से भिन्न है।

अतएव हे आत्मन् ! आत्मविश्वास, आत्मज्ञान, आत्म-अनुसन्धान, आत्म परीक्षण-निरीक्षण, आत्म-विश्लेषण, आत्मानुचरण से ही स्वात्मोपलब्धि रूप सुख-शान्ति, संवर, निर्जरा, मोक्ष प्राप्त किया जाता है। अन्य सब धार्मिक क्रिया-काण्ड, ब्रत-नियम-उपनियम, तप-त्याग, परीषह-उपसर्ग सहन, पूजा-पाठ, जप-तप, मन्त्र-ध्यान आदि इसके लिए साधन/निमित्त/कारण/उपाय हैं।

हे साधकात्मन् ! तुम्हारा निज आत्मा वैभव अक्षय अनन्त है। वर्तमान पंचमकाल के समस्त देश-विदेश के सामान्य जन से लेकर उद्योगपति, प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति, वैज्ञानिक, साधु-सन्त के वैभव सीमित है, क्षायोपशमिक, कर्मसापेक्ष हैं। अतएव आत्म वैभव की अपेक्षा वर्तमान के स्व-पर के वैभव अत्यन्त तुच्छ हैं, हेय हैं, इसलिए वर्तमान के स्व-पर वैभव से न राग करो, न ईर्ष्या करो, न अहंभाव करो, न दीन भाव करो। जो कुछ तुम्हारी वर्तमान की उपलब्धि का उपयोग ख्याति, पूजा, लाभ, प्रसिद्धि, संकलेश-तनाव, ईर्ष्या-द्वेष, लन्द-फन्द में करके इह-परलोक में दुःखी मत हो। शास्त्रों में वर्णन पाया जाता है कि प्राचीन काल के तीर्थकर, गणधर आदि चार ज्ञान एवं चौसठ ऋद्धियों के स्वामी होते हुए भी उन सबका उपयोग ख्याति, पूजा, प्रसिद्धि या यहाँ तक कि उनके ऊपर उपसर्ग-परीषह करने वालों के निवारण के लिए नहीं किया क्योंकि ऐसा करने से उपलब्धि का (1) सम्यक् सदुपयोग नहीं होता (2) प्राप्त उपलब्धि में मन्दता

आती है (3) आत्मोत्थ अक्षय उपलब्धि में बाधा होती है।

अतः हे आत्मन् ! “वन्दे तदगुण लब्धये” के अनुसार तुम्हारी पञ्च परमेष्ठी में जो पूजा/भक्ति/प्रार्थना तब यथार्थ होगी जब तुम उनके गुणों को स्वीकार करोगे क्योंकि गुणानुस्मरण, गुणानुवादन तथा गुणानुकरण ही यथार्थ भक्ति है, सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। अतः हे आत्मन् !

आदहिदं कादब्वं यदि चेत् पर हिदं कादब्वं,
आदहिदं परहिदादं आदहिदं सुदू कादब्वं ॥
उत्तमा स्वात्म चिंतास्यान्मोह चिन्ता च मध्यमा,
अधमा कामचिन्ता स्यात् परचिन्ताऽधमाधमा ॥

अर्थात् जिस प्रकार दीपक स्वयं पहले प्रकाशित होकर दूसरों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार तुम स्वयं स्व-उपकार करते हुए परोपकार करो। इसके बिना अन्य समस्त प्रपञ्च, ढोंग-पाखण्ड, संकलेश त्याग करो।

स्वकृत कर्म हीं शुभाशुभ -

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा-फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।
परेणदत्तं यदि लभ्यते स्फुटं-स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥ (30)

What ever karmas you have performed previously, you experience their fruits, whether good or evil. If what you experience is caused by another, then the karmas you have performed will clearly be of no effect.

भावार्थ - स्वयं के द्वारा पूर्व में उपार्जित शुभाशुभ कर्म के फल स्वरूप सुख-दुःख को जीव अनुभव करता है। यदि अन्य के द्वारा दिये गये कर्म तथा कर्मफल स्वरूप सुख-दुःख को जीव भोगता है तो स्वयं के द्वारा उपार्जित कर्म निरर्थक हो जाएगा।

प्राप्त शिक्षाएँ - “कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करहि, फलहुँ तस चाखा” के नियमानुसार प्रत्येक जीव स्व-स्व उपार्जित शुभ-अशुभ

कर्म के अनुसार सुख-दुःख स्वरूप फल को भोगता है। जैसा कि जो पानी को पीता है उसकी प्यास बुझती है न कि दूसरों की प्यास बुझती है; जो भोजन करता है उसकी भूख शान्त होती है, दूसरों की नहीं, जो विष पीता है उसकी मृत्यु होती है अन्य की नहीं, वैसा ही जो शुभ-अशुभ परिणाम करता है उसके अनुसार उसके आत्म प्रदेश में जो कर्म परमाणु पुण्य-पाप रूप में बन्धते हैं वे ही कर्म योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार जन्म-मरण, गति, आयु, शरीर, परिवार, भाव, व्यवहार, सहयोगी, साधन आदि की उपलब्धि होती है, सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि मिलते हैं। जैसा कि द्रव्य-क्षेत्र-कालादि के निमित्त को प्राप्त करके नीम, बबूल, आम, नारियल, गेहूँ, धान, चना आदि के बीज से जो वृक्ष बनेंगे उस बीज के अनुसार ही फल-बीज उत्पन्न करेंगे, अन्य बीज के अनुसार वैसा ही कर्मानुसार ही जीवों को सुख-दुःखादि मिलता है भले बाह्य निमित्त सहयोगी बनता है न कि प्रमुख कारण।

स्व-कर्म फल चिन्तन से साम्यभाव-

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो-न कोपि कस्यापि ददाति किञ्चन ।
विचारयन्नेवमनन्य मानसः-परो ददातीति विमुश्च शेमुषीम् ॥ (31)

Leaving aside the self-gathered karmas as the dweller in the body, no one gives anything to anyone. Think of this with a concentrated mind and give up the idea that their if another who gives.

भावार्थ - अपने द्वारा उपार्जित कर्म को छोड़कर कोई भी किसी भी जीव को कुछ देने में असमर्थ है। नहीं देता है ऐसा विचार कर दूसरा देता है ऐसी बुद्धि को छोड़कर एकाग्रमना हो।

प्राप्त शिक्षाएँ - जब सुनिश्चित हो जाता है कि स्वयं के सुख-दुःख के प्रमुख-मूलकारण स्व-उपार्जित कर्म ही है तब उस सुख-दुःख के लिए दूसरों को कारण मानकर उसके प्रति राग-द्वेषात्मक भाव से आकर्षण-विकर्षण नहीं होगा अपितु भाव स्वयं में ही केन्द्रित/स्थिर होगा। कर्म के फल स्वरूप सांसारिक

दुःखों से निवृत्ति के लिए कर्मास्त्रव एवं बन्ध से भी दूर होकर पूर्वार्जित कर्म को नष्ट करने का प्रयत्न होगा। अतएव कर्म सिद्धान्त का परिज्ञान/चिन्तन/अनुसन्धान नित्यान्त आवश्यक है।

लोक में भी शेर, भेड़िया, चीता, साँप आदि में शूरता-क्रूरता आदि परोपदेश के बिना होने से यद्यपि नैसर्गिक कहलाते हैं, परन्तु वे आकस्मिक नहीं हैं, क्योंकि कर्मोदय के निमित्त से उत्पन्न होते हैं।

उपरोक्त सिद्धान्त एवं दृष्टान्तों से सिद्ध होता है कि कर्म के निमित्त को प्राप्त करके यह जीव अनेक वैभाविक परिणामों को प्राप्त होकर नर नरकादि गति में विभिन्न दुःखों को भोगता है।

संसार अवस्था में विशेषतः परिणत अवस्था पर्यन्त कर्म की शक्ति जीव से अधिक प्रचण्ड रहती है। यह प्रचण्ड शक्ति केवल सामान्य जीव को कष्ट नहीं देती है किन्तु लोक के विशिष्ट चरम शरीर क्षायिक सम्यग्दृष्टि तीर्थकर भगवान् को भी परिणत अवस्था में वैचित्र्य पूर्ण कष्ट देती है। इस प्रचण्ड शक्ति का वर्णन आलंकारिक छटा से गुणभद्र स्वामी आत्मानुशासन में करते हैं -

पुरा गर्भादिन्द्रो मुकुलित करः कियर इव ।

स्वयं सृष्टा-सृष्टे: पतिरथ निधीनां निजसुतः ।

क्षुधित्वा षणमासान् स किल पुरुरप्याट जगती-

महो केनाप्यस्मिन् विलसितमलंघ्यं हतविधे: ॥ 119 ॥

जिस आदिनाथ जिनेन्द्र के गर्भ में आने के पूर्व छह महीने से ही इन्द्र दास के समान हाथ जोड़े हुए सेवा में तत्पर रहा, जो स्वयं ही सृष्टि की रचना करने वाला था, अर्थात् जिसने कर्म भूमि के प्रारम्भ में आजीविका के साधनों से अपरिचित प्रजा के लिये आजीविका विषयक शिक्षा दी थी तथा जिसका पुत्र भरत निधियों का स्वामी (चक्रवर्ती) था, वह इन्द्रादिकों से सेवित आदिनाथ तीर्थकर जैसा महापुरुष भी बुभुक्षित होकर छह महीने तक पृथ्वी पर घूमा, यह आशर्चर्य की बात है। ठीक है - इस संसार में कोई भी प्राणी दुष्ट दैव के विधान को लांघने में समर्थ नहीं है।

वेष्टनोद्वेष्टेन यावत्तावद् भ्रान्तिर्भवार्णवे ।

आवृति परिवृत्तिभ्यां जन्तोर्मन्थानुकारिणः ॥ 178 ॥

मथनी का अनुकरण करने वाले जीव के जब तक रस्सों के बंधने और खुलने के समान कर्मों का बन्ध और निर्जरा (सविपाक) होती है तब तक उक्त रस्सी के खींचने और ढीली करने के समान राग और द्रेष से उसका संसार रूप समुद्र में परिभ्रमण होता ही रहेगा ।

दैव (भाग्य) से ही एकान्ततः कार्य की सिद्धि (सुख-दुःख, ज्ञान, अज्ञान, कार्य की सफलता, निष्फलता अंगीकार की जाय तो प्रश्न यह उठता है कि भाग्य कैसे बना ? क्यों बना ?

‘स्वयं कृतं कर्मयदत्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।’

“What ever karmas you have performed perciouly you experience their fruits, whether good or evil.”

यह जीव पूर्व में जो शुभ या अशुभ पुरुषार्थ किया था, उसके फलस्वरूप वह पुरुषार्थ का परिपाकरूप शुभ-अशुभ रूप भाग्य का उपभोग करता है । अर्थात् भूत का पुरुषार्थ वर्तमान का भाग्य एवं वर्तमान का पुरुषार्थ भविष्य का भाग्य रूप से परिणमन करता है, जैसे बीज से वृक्ष एवं वृक्ष से बीज की तरह । जैसा बोयेंगे वैसा पायेंगे ।

“As we sow we Reap”

पुरुषार्थ एवं भाग्य में कारण कार्य भाव है ।

साधारणौ सकल जन्तुषु वृद्धिनाशौ,

जन्मान्तरार्जित शुभा शुभ कर्मयोगात् ।

धी मान्स यः सुगति साधनवृद्धि नाश ।

स्तद्वयत्यया द्विगत धीर परोऽन्धधायि ॥ 148 ॥

(आत्मानुशासन)

पूर्व जन्म में संचित किये गये पुण्य और पाप कर्म के उदय से जो आयु,

गारी एवं धन-सम्पत्ति आदि की वृद्धि और उनका नाश होता है वे दोनों समस्त प्राणियों में ही समान रूप से पाये जाते हैं । परन्तु जो सुगति अर्थात् मोक्ष को सिद्ध करने वाले वृद्धि एवं नाश को अपनाता है वह बुद्धिमान तथा दूसरा इनकी विपरीतता से दुर्गति के साधन-भूत वृद्धि नाश को अपनाने से निर्बुद्धि (मूर्ख) कहा जाता है ।

परमात्म -चिन्तन एवं पवित्रता से मुक्ति लाभ -

यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः, सर्व विविक्तो भृशमनवद्यः ।

शशवदधीतो मनसि लभन्ते-मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥ 32 ॥

Such persons as those , who always meditate upon the High-self, who is reverd by Amitagati, who is distinct from everything and who is worthy of high praise , attain the supreme bliss which abides in Salvation .

भावार्थ- जो परमात्मा अमितगति द्वारा बन्दनीय हैं, सम्पूर्ण कर्मों से रहित, सर्वथा निष्पाप हैं, ऐसे परमात्मा को मन में सतत चिन्तन करते हैं, वे परम वैभव से युक्त मोक्ष महल को प्राप्त करते हैं ।

प्राप्त शिक्षाएँ - सांसारिक उपलब्धियों से परे हैं/परम श्रेष्ठ है आध्यात्मिक उपलब्धियाँ ।

कुबोध रागादि विचेष्टितैः फलं,

त्वयाऽपि भूयोजननादि लक्षणम्

प्रतीहि भव्यप्रतीलोम वर्तिभि,

धूवं फलं प्राप्सयसि तद्विलक्षणम् ॥106॥ (आत्मानुशासनम्)

हे भव्य ! तूने बार बार मिथ्यात्व, अज्ञान एवं राग द्रेषादि जनित प्रवृत्तियों से जन्म- मरणादि रूप फल प्राप्त किया है उसके विरुद्ध प्रवृत्तियों सम्यज्ञान एवं राग्य जनित आचरणों के द्वारा तू निश्चय से उसके विपरीत फल अजर-अमर पद से प्राप्त करेगा, ऐसा निश्चय करें ।

दयादमत्याग समाधि संततेः पथि प्रयाहि प्रगुणं प्रयत्नवान् ।
नयत्यवश्यं वचसामनगोचर विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ ॥ 10 ॥

हे भव्य ! तू प्रयत्न करके सरल भाव से दया, इंद्रियदमन, दान और ध्यान की परंपरा के मार्ग मे प्रवृत्त हो जा वह मार्ग निश्चय से किसी ऐसे उत्कृष्ट पद को प्राप्त करता है जो वचन से अनिर्वचनीय एवं समस्त विकल्पों से रहित है।

दया-धर्म-त्याग-समाधि निष्ठम् नय प्रमाण प्रकृताङ्ग्ब्राह्मण्डर्थम् ।
अधृत्य मन्त्रैरखिलैः प्रवादैः जिन ! त्वदियं मतद्वितीयम् ॥ 6 ॥

युक्त्यनुशासनम्

हे वीर जिन ! आपका यह अनेकान्त रूप शासन अद्वितीय है। इसमें दया, दम, त्याग और समाधि में तपाता है। नयों एवं प्रमाणों द्वारा इसमें द्रव्य, पर्याय स्वरूप जीवादिक तत्वों का अविरोध रूप से, सुनिश्चित असंभव बोधक रूप से निर्णय किया गया है एवं इसमें समस्त एकान्त प्रवादों दर्शन मोहनीयके उदयसे सर्वथा एकान्त वादियों की कल्पित मान्यताओं द्वारा किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती है।

हे आत्मन् ! मोक्ष प्राप्ति का पूर्ण अद्वितीय मार्ग रत्नत्रय ही हैं। अनन्त अनंतदर्शियों ने इस मार्ग पर चलते हुए मोक्ष को प्राप्त किया हैं। वे अनन्तज्ञान को प्राप्त करके पूर्णरूपेण प्रत्यक्ष से अनुभव करके रत्नत्रयात्मक मार्ग को ही यथार्थ मार्ग और इससे अतिरिक्त कुमार्ग दुःख का मार्ग एवं संसार का मार्ग कहा है। आचार्य प्रवर समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है -

सदृष्टिज्ञान वृत्तानि धर्म धर्मेश्वरा विदुः ।
यदियप्रत्यनीकानि भवन्ति भव पद्धतिः ॥ 3 ॥

सदृशन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र ही धर्म है, मोक्ष का मार्ग है, इससे विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं कुचारित्र ही कुर्धर्म है, दुःख का मार्ग है, संसार का मार्ग है, ऐसा धर्म के ज्ञाता धर्म के प्रभु ने बताया है। आचार्य उमास्वामी भी मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र का प्रतिपादन करते हुए प्रथम पंक्ति में बताते हैं कि -

सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः ॥ “तत्वार्थसूत्र”

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र इन तीनों का सम्यक् संयोग रूप त्रयात्मक मोक्ष का मार्ग है।

Right belief, Right knowledge, Right conduct, these (Together contribute) the path of liberation.

“Self reverence, self knowledge and self control, these three alone lead life to sovereign power”

उपसंहार तथा उद्देश्य

इति द्वात्रिंशतावृत्तैः परमात्मानमीक्षते ।

योऽनन्यगत चेतस्को यात्यसौ पदमव्ययम् ॥ 33 ॥

भावार्थ - जो एकाग्रचित होकर इन बत्तीस श्लोकों के द्वारा परमात्मा के दर्शन लिता है वह अव्यय पद को प्राप्त करता है।

प्राप्त शिक्षाएँ - जिस प्रकार कोई एक निश्चित अज्ञात लक्ष्य स्थल को प्राप्त लिने के लिए पहुँचने के लिए उस सम्बन्धी सही नक्शा, दिशा सूचक यंत्र उस सम्बन्धी जानकारियाँ तब सहयोगी हैं जब उसके अनुसार यात्रा हो, यात्रा के बिना वह सब सहयोगी नहीं होते हैं उसी प्रकार आध्यात्म क्षेत्र में भी जान लेना चाहिये।

सर्व प्रेप्सति सत्सुखास्मिमिचिरात् सा सर्वकर्मक्षयात्
सद्वत्तात् स च तत्त्व बोधानियतं सोऽप्यगमात् स श्रुतेः ।
सा चासात् स च सर्वदोषरहितो रागादयस्तेऽप्यतः
तं युक्त्या सुविचार्य सर्वसुखदं सन्तः श्रयन्तुश्रिये ॥ 9 ॥

सब प्राणी शीघ्र ही यथार्थ सुख को प्राप्त करने की इच्छा करते है, वह सुख प्राप्ति समस्त कर्मों का क्षय हो जाने पर होती है, वह कर्मों का क्षय भी सम्यक् चारित्र के निमित्त से होता है, वह सम्यक् चारित्र भी सम्यग्ज्ञान के आधीन है, वह सम्यग्ज्ञान भी आगम से प्राप्त होता है, वह आगम भी द्वादशांग रूप श्रुत के सुनने से होता है, वह द्वादशांग श्रुत भी आगम से आविर्भूत होता है, आगम भी वही हो सकता

है जो समस्त दोषों से रहित है, तथा वे दोष भी राग-द्रेष रूप है। इसलिए सुख के मूल कारणभूत आप का (देव का) युक्ति (परीक्षा) पूर्वक विचार करके सज्जन मनुष्य बाह्य एवं अभ्यंतर लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए सम्पूर्ण सुख देने वाली उसी आप का आश्रय करें।

सर्वज्ञ, प्रामाणिक आप से सुनने मात्र से शास्त्रों की पढ़ाई (रीडिंग) मात्र से या विभिन्न इन्द्रियों से उनके योग्य विषयों को ग्रहण करने मात्र से ज्ञान की परिपक्वता की पूर्णता नहीं हो जाती है जैसे कि भोजन निगलकर पेट में पहुँचने मात्र से उस भोजन से कैलोरी /रस/ऊर्जा प्राप्त नहीं हो जाती है; जब तक कि भोजन पचता नहीं है वैसा ही जानकारियाँ/पढ़ाई, सुनना, आदि ज्ञान रूप से तब तक परिणमन नहीं कर लेता है, जब तक उसे मनन, चिन्तन, अनुप्रेक्षा, परीक्षण, निरीक्षण, ध्यानादि के माध्यम से आत्मसात् करके, अनुभव करके प्रायेगिक नहीं किया जाता है।

अतएव इन बत्तीस श्लोकों के विषयों को केवल कंठस्थ-मुखस्थ न करके हृदयस्थ-ध्यानस्थ करना चाहिये। कंठस्थ-मुखस्थ से भले लोकरंजन-मनोरंजन हो परन्तु आत्मज्ञान-आत्मोपलब्धि संभव नहीं हैं। अतः आत्मज्ञान-आत्मोपलब्धि के लिए 32 श्लोकों के प्रतिपाद्य विषयों को परमात्म दर्शन के माध्यम से स्व-आत्मदर्शन से लेकर स्वात्मोपलब्धि के लिये प्रयोग करना ही सर्वोच्च ध्येय होना चाहिये।

परिशिष्ट - I

पूर्ण हुई-हो रही-और होने की प्रतीक्षा में हैं मेरी भावना
(मेरे लक्ष्य, विचार, निर्णय, नियम, अनुभव, योजना,
कल्पना, पूर्वाभास, पूर्वानुमान आदि सम्बन्धी)

- आचार्य कनकनन्दी, रामगढ़

दिनांक - 24-2-2010 फाल्गुन शुक्ला 10

इस संक्षिप्त लेख में मैं मेरे लक्ष्य आदि के बारे में लिखने के बहुविध उद्देश्य यथा (1) “यादृशी भावना यस्यसिद्धिर्भवति तादृशी” जहाँ चाह वहाँ राह, As you think so you become, धीरे-धीरे रे मनुआँ धीरे धीरे सब कुछ होय, As you sow so you reap, धर्म (अच्छी-सच्ची भावना) ही यथार्थ से कामधेनु-चिन्तामणी-कल्पवृक्ष-मंत्र-तंत्र-सर्व सुखदाता, आदि महान् सूत्रों जो महामानवों दिया हैं वे सब जीवन में अपनाने पर कितने सत्यसिद्ध होते हैं, कितने असत्य होते हैं, कितने फलप्रद हैं, कितने निष्फल हैं। (2) मैं स्वयं मेरे जीवन के हिसाब-काब, लेखा-जोखा, लाभ-हानि, दिशा-दशा-आशा, उपलब्धियाँ-हानियाँ, जीवन वृतान्त, आध्यात्मिक-वैचारिक आत्मकथा, जीवन डायरी, मेरे स्वयं के विशेष-निरीक्षण के लिए भी लिख रहा हूँ जिससे मैं स्वयं के लक्ष्य से विचलित न होऊँ और लक्ष्य प्राप्ति तक सतत प्रयत्न शील रहूँ। (3) मेरे अनुभव से विश्व मानव भी लाभ हो। क्योंकि मैंने जो देश-विदेशों के विविध-विधाओं के साहित्य का अध्ययन किया, बाल्यकाल से देश-विदेशों के लोगों के बारे में पढ़ा-सुना तथा जारों, लाखों का अनुभव किया उस से मुझे परिज्ञान हुआ है कि प्रायः अधिकांश आमान्य जन से लेकर प्रसिद्ध व्यक्ति, नेता, धनी, मानी, जानी, धार्मिक अनुयायिओं लेकर धर्म-प्रचारक तक रातों-रात सफलता प्राप्त करने के लिये येन-केन प्रकार से चित-अनुचित उपायों को अपनाते हैं। जिससे भले उन्हें पहले कुछ सफलता प्राप्त होती हैं किन्तु अन्ततोगत्वा उन्हें असफलता ही प्राप्त होती हैं। क्योंकि “सत्यमेव

जयते नानृतम्” प्राकृतिक-सत्य न्याय में देरी हैं किन्तु अन्धेरा नहीं। मेरी पवित्र उदार भावना हैं कि महान् पुरुषों के द्वारा अनुभूत सार्वभौम-शाश्वतिक सत्य का विश्व जाने-माने-अपनाये किन्तु सफलता प्राप्त करने के लिये अनैतिक, अयोग्य उपायों को अपनाकर स्व-पर-विश्व को क्षति न पहुँचायें। जैसा कि सही गति। सही दिशा में सही मति (भाव) से अनेक कार (car) में यात्रा करने वाले यात्री स्व-स्व लक्ष्य में समय पर सुरक्षित पहुँच जाते हैं परन्तु कोई एक कार (car) में भी गति-दिशा-मति से यदि कोई एक में भी अयोग्य परिवर्तन हो जाता है तो अनेक कार बेकाहो जाती हैं और यात्रियों की परलोक या चिकित्सालय की यात्रा हो जाती है। ऐसा दुर्घटना से स्व-पर-विश्व को बचाने के लिये यह मेरा एक सनम्र प्रयास है न कि अहंकार प्रगट करने के लिये या दूसरों को अनुचित रूप से प्रभावित करने के लिये।

मेरे अनेक लक्ष्य-विचार, निर्णय, अनुभव, योजना, पूर्वाभास, पूर्वानुमान, कल्पना, भावना आदि इस जीवन के प्रारंभिक-बाल्यकाल से ही रहे हैं। जिसमें अनेक सफल हुए हैं, अनेक हो रहे हैं और अनेक होने की प्रतीक्षा में हैं। निम्न कुछ संक्षिप्त दिग्दर्शन प्रस्तुत हैं।-

(1) **लक्ष्य-** मेरा बाल्यकाल से ही परम सर्वोच्च अन्तिम लक्ष्य है- सत्य का जानना, मानना, अपनाना, अनुभव करना एवं तन्मय होना अर्थात् सत्य की उपलब्धि। एतदर्थ ही मेरे प्रत्येक अध्ययन, परीक्षण-निरीक्षण, चिन्तन, लेखन, प्रवचन, अध्यापन हो रहे हैं। इसके लिये मैं हर क्षेत्र में, हर परिस्थिति में सना सत्यग्राही होने के लिये पूर्ण प्रयत्नशील होने का प्रयास कर रहा हूँ। इसके लिये मैं निष्पक्ष, पूर्वाग्रह से रहित स्वीकारवृत्ति, निर्भय, प्रगतिशीलता, उदारता, सहिष्णुता, गुणग्राहीकता, नवीन-अध्ययन-शोध-बोध-अनुभव-चिन्तन- जिज्ञासा आदि को अपनाने को प्रयत्नशील हूँ। इससे मुझे धीरे-धीरे अनुभव होता जा रहा है कि भाव की पवित्रता, समता, शान्ति, स्वाध्याय-ध्यान, समग्र सत्यग्राहीता, एकाग्रता, अनुभूति आदि से ही सत्य की उपलब्धि संभव है न कि केवल लौकिक या धार्मिक पढ़ाई से या बाह्य साधन या साधना या आडम्बरों से। यहाँ तक कि आधुनिक विज्ञान से भी यह संभव नहीं है क्योंकि आधुनिक विज्ञान भी संकीर्ण भौतिक क्षेत्र।

ही सीमित है। इसी प्रकार संविधान, राजनीति, इतिहास कानून से भी परम सत्य की उपलब्धि संभव नहीं हैं। इस परम लक्ष्य को केन्द्र करके प्रत्येक विचार, निर्णय, योजना, भावना, अध्ययन-अध्यापन-लेखन-प्रवचन आदि कर रहा हूँ और करूँगा भी।

(2) **विचार-** मेरे बाल्यकाल से 3 विचार थे। यथा- 1 मानव सेवा के लिये गार्षीय या अन्तर्राष्ट्रीय जन सेवक-नेता बनना या 2 सत्य को जानने के लिये वैज्ञानिक बनना अथवा 3 स्व-परम सत्य की उपलब्धि तथा विश्व-कल्याण के लिये निष्पृही-समताधारी सच्चा-अच्छा आध्यात्मिक साधक साधु बनना। वर्तमान में मैं साधु अवस्था में उपरोक्त लक्ष्य एवं विचारों को क्रियान्वयन करने के लिये सन्तभाव से सतत प्रयत्नशील हूँ और सफलता भी धीरे-धीरे प्राप्त हो रही है। एतदर्थ देश-विदेशों के अनेक जैन-अजैन महानुभावों का सहदय स्वेच्छिक सहयोग भी प्राप्त हो रहा है, परन्तु पूर्ण सफलता अभी प्राप्त नहीं हुई है लेकिन होने की प्रतीक्षा में है।

(3) **निर्णय-नियम/प्रतिज्ञा-** मैंने बाल्यकाल से ही अनेक निर्णय, (नियम/प्रतिज्ञा) लिया हूँ और लेता जा रहा हूँ। यथा (1) सतत विद्यार्थी रहूँगा, (2) सतत बालक (सहज-सरल) रहूँगा, (3) बाल ब्रह्मचारी रहूँगा भले नेता-वैज्ञानिक या साधु में से कुछ भी क्यों न बनूँ, (4) सत्य न्याय, सेवा परोपकार को अपनाऊँगा, (5) साधु बनने के बाद नियम लिया हूँ-ख्याति, लाभ, पूजा, प्रसिद्धि, पंथ, मत, संत, ग्रंथ-पूजा-पाठ-परम्परा-रीति-रिवाज की संकीर्णता-कट्टरता से परे रहूँगा, धार्मिक कार्य (मन्दिर-धर्मशाला-मूर्ति निर्माण, साहित्य प्रकाशन-शिविर-संगोष्ठी-देश-विदेश में धर्म प्रचार, विधान, पंच-कल्याणक, प्रवचन, वेदी प्रतिष्ठा, तीर्थ-यात्रा, विहार आदि) के लिये भी धन की याचना नहीं करूँगा, बोलियाँ नहीं करूँगा, नहीं करवाऊँगा, बोली के लिये दबाव नहीं डालूँगा परन्तु तटस्थ/समता में रहूँगा। किसी भी कार्य, या धार्मिक कार्य के लिये भी दबाव नहीं डालूँगा अपितु धार्मिक कार्य के लिये प्रवचन, लेखन, प्रेरणा, प्रोत्साहन, अनुमोदना, प्रशंसा आदि करूँगा, किसी भी प्रकार से सामाजिक लन्द-फन्द-संकलेश से दूर रहूँगा, गृहस्थ/

श्रावक योग्य धार्मिक कार्य यथा मन्दिर-मूर्ति-धर्मशाला पाठशालादि निर्माण तथा जीर्णोद्धार, विधान, पंचकल्याणक, प्रवचन के आयोजन, चौका लगाना, आदि में सक्रिय लिप्त नहीं होऊँगा। इन सब के लिये संकलेश नहीं करूँगा, स्व-पर के ऊपर दबाव नहीं डालूँगा किन्तु प्रवचन आदि कर सकता हूँ तथा सरल सहज रूप से मर्यादा में रहते हुये सहभागी-सहयोगी भी बन सकता हूँ। इस ही प्रकार संकीर्ण-कट्टर-असम्यक्-अयोग्य शिक्षा-विज्ञान-इतिहास-संविधान-कानून-राजनीति-भाषा-राष्ट्रीयता-नीति-नियम-जाति-संगठन-समाज से परे सत्य-समता-शान्ति-सापेक्षता-उपयोगिता-न्याय-उदारता-प्रगतिशीलता-वैशिक मैत्री-शान्ति की भावना/साधना करूँगा। इस क्षेत्र में भी स्व-पर के सहयोग से द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-पुरुषार्थ के अनुसार सफलता प्राप्त हो रही है और होने की प्रतीक्षा में है।

(4) अनुभव- देश-विदेशों के धर्म-दर्शन-विज्ञान-इतिहास-कानून-महापुरुषों की जीवनी के अध्ययनों से परिज्ञान होता है कि सब महापुरुषों ने सच्चे-अच्छे भाव एवं व्यवहार को सबसे अधिक महत्व दिया है। मैंने भी दीर्घ अनुभव से पाया है कि सम्पूर्ण अच्छे-सच्चे कार्य के लिये सुख-शान्ति-सम्वृद्धि के लिये तथा जीवन को महान्-आदर्श बनाने के लिये सच्चे-अच्छे अनुभव अनिवार्य हैं। ऐसा अनुभव केवल लौकिक या धार्मिक पुस्तकों को पढ़ने से, रटने से, याद करने से, भाषण लेखन से या दिखावा से नहीं आता है। अनुभव (अनु+भव अर्थात् किसी भी विषय/घटना/भाव के आत्मसात् होने के बाद) तो आत्म-प्रदेशों की गहराई में अनुभूति है। मैंने विविध-विधाओं का दीर्घ अनुभव किया है कि एक अनुभव हजारों-लाखों जानकारियों से भी श्रेष्ठ है, ज्येष्ठ है तथा इसकी उपलब्धि दुर्लभ-कष्ट साध्य-क्लिष्ट है। मैंने यह भी अनुभव किया है कि अधिकांश व्यक्तियों में अनुभव जन्य ज्ञान/विवेक कम होता है। इसलिये उनकी जानकारियाँ उन्नत-सुख-शान्तिमय-समतापूर्ण-समन्वयात्मक जीवन जीने के लिये, कार्य को सही समय पर सही पद्धति में सम्पादन करने के लिए सक्षम नहीं होती है। और भी मैंने यह अनुभव किया है कि लौकिक या धार्मिक जानकारियों को संग्रह करने के लिये जो भी व्यक्ति कोशिश करते हैं वे भी प्रायः अनुभवात्मक ज्ञान के लिये कोई

विशेष पुरुषार्थ नहीं करते हैं, महत्व नहीं देते हैं। इसलिये ऐसे व्यक्तियों से मैं तटस्थ रहता हूँ। क्योंकि वे प्रायः अनुभव को नहीं समझ पाते हैं, न ही ग्रहण कर पाते हैं अपितु मुझे ही गलत मानते हैं, नकारते हैं, असम्यक् व्यवहार करते हैं। इससे विपरीत अनपढ़ भी उदारमना अनुभवी शीघ्रता से मेरे अनुभव को समझ पाते हैं, ग्रहण करते हैं। अनुभवहीन रटन्त लौकिक शिक्षित या धार्मिक ज्ञानी प्रायः अनुदार, संकीर्ण, पूर्वाग्रही, अहंकारी, संकलेषी होते हैं। मैंने यह भी अनुभव किया है कि अधिकांश व्यक्ति सत्ता-सम्पत्ति प्रसिद्धि को चाहने वाले, कषाय युक्त, संसारिक सुख-सम्वृद्धि के इच्छुक, आध्यात्मिकता से रहित बाह्य धार्मिक क्रिया-काण्डों को ही महत्व देने वाले होते हैं। अतः मैं मेरे इस अनुभव से ऐसे भाव-व्यवहार-कथन-कार्य करता हूँ जिससे दूसरों को बिना क्षति पहुँचाये, दूसरों की अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतिक्षा से रहित होकर स्व-पर-विश्वकल्याण सरल-सहज-रूप से संत गति से शान्ति से हो। इसलिये मैं दूसरों का अन्धानुकरण नहीं करता हूँ, किसी से भी प्रतिस्पर्धा नहीं करता हूँ न ही केवल बाह्य कठोर साधना, दिखावा, आडम्बर करता हूँ, नहीं करूँगा। किसी भी कार्य को स्वयं स्वेच्छा से, एकाग्रता से सरल-सहज भाव से तनाव रहित होकर समग्रता से करने पर, चिन्तन-मनन, अध्ययन-अध्यापन, ध्यान, समीक्षा, समन्वय करने पर तथा सतत पर्याप्त मात्रा में अभ्यास करने पर अनुभव आता है तथा उसे लगातार आत्मा में वेदन करने पर अनुभव में परिपक्वता आती है। अतएव मैं इस प्रक्रिया से मेरे अनुभव को और भी सम्वृद्धि, पारदर्शी, परिपक्व बनाने में प्रयत्नशील हूँ। मैंने 13 प्रदेश के लाखों व्यक्तियों का अनुभव किया कि जो भी पवित्र भाव से स्वेच्छा से अच्छे कार्य करते हैं तथा हमें भी स्वेच्छा से पवित्र भाव से तन-मन-धन-समय-श्रम-साधनों से सहयोग करते हैं, आहार-दान, ज्ञान-दान, औषधि-दान, उपकरण-दान, वसतिका-दान करते हैं, साहित्य लेखन आदि में सहयोग योगदान करते हैं, सेवा-वैयावृत्ति करते हैं प्रायः उन सबके हर प्रकार का लाभ, विकास हो रहे हैं जिससे वे स्वेच्छा से उत्तरोत्तर अधिक से अधिक यथायोग्य सहयोग, सेवा, व्यवस्था कर रहे हैं और मुझे इसके लिये निवेदन भी कर रहे हैं।

(5) भावित योजनायें- “जो पिण्डे सो ब्रह्माण्डे” “Action is the end of thought” के अनुसार मेरी समस्त योजनाएं भी मेरे पूर्वोक्त तथा अग्र

लिखित लक्ष्यादि से जायमान हैं, अनुसृत हैं, सहित हैं। मेरी भावित योजनाएं प्रमुखतः भावात्मक, आध्यात्मिक, वैचारिक, समन्वयात्मक, एकतायुक्त, स्व-पर-विश्वमैत्री-शान्ति-कल्याणमय हैं। मेरी योजना के अन्तर्गत (1) मैं स्वयं आदर्श बनने का प्रयत्न कर रहा हूँ और करता रहूँगा। (2) स्वसंघ के साधु-सन्तों को आदर्श बनाने के लिये प्रयास, (3) अन्य साधु-सन्त के लिये भी यथायोग्य प्रयास, (4) नई पीढ़ी को आदर्श बनाने के लिये प्रयास, (5) भारत को पुनः विश्व गुरु बनाने की भावना (6) जैन एकता विश्व शान्ति की भावना, एतदर्थ

(1) धर्म-दर्शन-वैज्ञान-न्याय-राजनीति आदि का समन्वयात्मक आध्यात्मिक वैज्ञानिक दृष्टि से शोध-बोध-पूर्ण अध्ययन; अध्यापन, लेख-साहित्य लेखन एवं प्रकाशन तथा देश-विदेशों में प्रचार-प्रसार (2) शिविर, कक्षा, प्रवचन, संगोष्ठी आदि के माध्यम से देश-विदेशों के विद्यार्थी, शिक्षक, आम जनता, विद्वान्, प्रोफेसर, वैज्ञानिक, डॉक्टर, वकील, न्यायाधीश, इंजीनियर, शोधार्थी आदि को प्रशिक्षित करना (3) स्व-विद्वान् शिष्यों के द्वारा देश-विदेशों में उपर्युक्त कार्यों के लिये स्वेच्छा से प्रयास (4) आधुनिक वैज्ञानिक प्रचार-प्रसार-संचार माध्यमों का यथायोग्य सम्यक् आवलम्बन (5) प्राथमिक विद्यालयों से लेकर विश्व विद्यालयों में अध्ययन-अध्यापन-शोध-कार्य (6) देश-विदेशों के जैन-अजैन उदारमना महानुभावों के स्वेच्छिक तन-मन-धन-समय-श्रम-साधनों के योगदान का सटुपयोग आदि आदि। इनमें से अनेक योजनाएं अनेक वर्षों से क्रियान्वयन है तथा प्रगति के पथ पर हैं। कुछ योजनाओं का शुभारंभ हो गया है और कुछ शुभारम्भ की प्रतीक्षा में हैं तो कुछ पूर्णता की प्रतीक्षा में हैं।

(6) पूर्वाभास-पूर्वानुमान- मुझे बाल्यकाल से ही विभिन्न साहित्यों के अध्ययन-मनन-ध्यान, महापुरुषों से अध्ययन-चर्चा, प्रकृति के निरीक्षण-परीक्षण-सामिप्य, स्वयं के स्वप्न-अंगस्फुरण-ओरा (प्रभामण्डल) छाया पुरुष दर्शन, विभिन्न प्रकार के शकुन, स्व भावात्मक-शकुन, स्वयं के शरीर के विभिन्न आंगोपांग के लक्षण-चिन्ह आदि के द्वारा स्व-पर-राष्ट्र सम्बन्धी विविध विधाओं के (सुख-दुःख, रोग, मृत्यु, हानि-लाभ, संयोग-वियोग, वर्षा, राजनैतिक दलों के जय-पराजय, प्राकृतिक परिवर्तन-आपदा, दूसरों के भाव-व्यवहार-भविष्य आदि)

बारे में हजारों पूर्वाभास तथा पूर्वानुमान हुए हैं जो कि प्रायः सत्य सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं और होने कि प्रतीक्षा में हैं। इसी प्रकार इतिहास, कानून, राजनीति, संविधान, परम्परा, शिक्षा, विज्ञान, राष्ट्र, प्रदेश, क्षेत्र, ग्राम, नगर, व्यक्ति, साधु, राजनेता आदि के बारे में मेरे अनेक पूर्वाभास-पूर्वानुमान सही सिद्ध हो गये हैं, अनेक सही सिद्ध हो रहे हैं और अनेक सही सिद्ध होने की प्रतीक्षा में हैं। मेरे 45-47 वर्षों के हजारों के सत्य अनुभव से यह सिद्ध होता है कि जो व्यक्ति-समाज-धर्मपंथ-मत-संत-ग्रन्थ-परम्परा-विज्ञान-वैज्ञानिक उपरोक्त सत्य पूर्वाभास, स्वप्न शकुन आदि को नहीं मानते हैं, मिथ्या मानते हैं ढोंग-अन्धविश्वास, मानसिक विभ्रम आदि मानते हैं वे इस सम्बन्धी सत्य-तथ्य से अनभिज्ञ हैं। दूसरों के व्यक्तिगत विषयों को छोड़कर कुछ सामूहिक, मेरे और मेरे शिष्य-भक्तों के पूर्वाभास-पूर्वानुमान सम्बन्धी दिग्दर्शन प्रस्तुत हैं जो कि सत्य रूप से घटित हो गये हैं और अभी हो रहे हैं और होने वाले हैं।

विद्यार्थी अवस्था से ही मुझे पूर्वाभास-पूर्वानुमान से अनुभव होने लगा था कि ग्राम के गरीब व्यक्तियों को न्याय दिलाने के लिये न्यायालय को ग्राम में जाना चाहिये। मैं जब लोकनायक जय-प्रकाश नारायण से मिलने के लिये कलकत्ता गया तब अनेक राष्ट्रीय समस्याओं (प्रायः 21 समस्याओं के साथ-साथ इस विषय का भी उल्लेख पूर्वक बंगला भाषा में पत्रिका (पंप्लेट) छपाकर वितरण किया था जो कि अभी कुछ वर्ष पहले सिद्ध हुआ अर्थात् लोक-अदालत का निर्माण हुआ। वर्तमान की शिक्षा सम्बन्धी मुझे 20-22 वर्ष पहले पूर्वाभास हुआ था अभी वह सब पूर्ण भारत में सत्य सिद्ध हो रहा है। यथा-पढ़ाई-परीक्षा के कारण, दबाव/भय से छात्रों के स्वास्थ्य के ऊपर विपरीत प्रभाव, लड़ाई, झगड़ा, आलस्य, फैशन, व्यसन, गुण्डा-गर्दी, उत्श्रृंखल, अश्लील, भारतीय संस्कृति से विमुख, पाश्चात्य अपसंस्कृति का अन्धानुकरण, हत्या, बलात्कार, स्वयं का अपहरण करवाना, रोगी होने का बहाना, नट-नटियों (हीरो-हीरोइन) को आदर्श मानकर उनका अन्धभक्त बनना से लेकर आत्महत्या करना आदि होने का पूर्वाभास हो गया था-जिसका वर्णन मैंने 18-19 वर्षों के पहले से ही प्रवचन, चर्चा, कक्षा, संगोष्ठी, लेख, साहित्य (सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा संस्कृति नारी -गरिमा) आदि में किया है। इस के आधार पर मैंने

पूर्वानुमान किया कि जब तक भारत में आध्यात्मिक-नैतिक-वैज्ञानिक प्रगतिशील शिक्षा-संस्कार-चारित्र की स्थापना नहीं होगी तब तक भारत में सुख-शान्ति-एकता-अखंडता-प्रेम-मैत्री की स्थापना नहीं हो सकती है भले शिक्षा, धार्मिक, क्रिया-काण्ड, उद्योग, प्रोद्योग, आर्थिक विकास आदि भी क्यों न हो।

विज्ञान सम्बन्धी भी मेरे अनेक पूर्वभास-अनुमान हुए हैं और अभी भी हो रहे हैं जो कि सत्य सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं और होने की प्रतीक्षा में हैं। इस सम्बन्धी विस्तृत वर्णन मेरी “जैन तथ्य” (भारतीय तथ्य) जो आधुनिक विज्ञान से पेरे (ज्ञानधारा-1 से 15)

कृतियों में किया गया है, तथापि यहाँ संक्षिप्त दिग्दर्शन कर रहा हूँ। यथा- (1) प्रकाश भी पौद्रलिक स्कन्ध है तथा इसकी गति परम नहीं है। (2) डार्विन का जीवोत्पत्ति तथा विकासवाद सही नहीं आदि सत्य सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं और होने की प्रतीक्षा में हैं। यह सब हो रहा है-वैज्ञानिक-विज्ञान की सनम्र सत्य-ग्राहीता-उदारता-प्रगतिशीलता के कारण। मेरा यह भी पूर्वभास सही सिद्ध हो रहा है कि विज्ञान-वैज्ञानिकों की प्रगति होगी और वे धीरे-धीरे सत्य, अहिंसा, उदारता, सहिष्णुता, सादा जीवन उच्च विचार, पर्यावरण सुरक्षा संस्कृति, शाकाहार, निर्व्यसन, विश्व मैत्री विश्व शान्ति की ओर बढ़ेंगे, संकीर्णता, अन्धविश्वास, पूर्वाग्रह आदि घटेंगे। विज्ञान-वैज्ञानिक धीरे धीरे आध्यात्मिक धर्म को स्वीकार करते जायेंगे। धीरे-धीरे धर्म विज्ञानमय एवं विज्ञान धर्ममय होता जायेगा। इसलिये भी मैं धर्म-विज्ञान- दर्शन का यथायोग्य समीक्षात्मक समन्वय करते हुए शोधपूर्ण साहित्य लेखन, अध्ययन-अध्यापन, प्रायोगिक करण, प्रचार-प्रसार करने का प्रयास कर रहा हूँ जिससे सफलता प्राप्त हो रही है और आगे अधिक होने की प्रतीक्षा में है। विशेषतः यह सब मेरी पवित्र भावित-भावनायें हैं।

मेरे पूर्वभास के साथ साथ भावना है कि प्रत्येक मनुष्य के साथ साथ प्रत्येक वनस्पति-पशु-पक्षी को भी सुखमय जीवन जीने का अधिकार मिले। अर्थात् केवल मानव अधिकार ही पर्याप्त नहीं हैं सर्व जीवाधिकार हों। इस सम्बन्ध में मैंने मेरी कृति- “वैश्वीकरण वैश्वीक धर्म एवं विश्व शान्ति” आदि में वर्णन भी पहले से ही किया है। इसका शुभारम्भ इक्वाडोर देश ने प्रत्येक जीवों के लिये ‘प्रकृति का

अधिकार’ देने के माध्यम से कर दिया है। ऐसा सर्वजीवाधिकार प्राकृतिक न्याय/संविधान भारत सहित प्रत्येक देश में बने और सब उसका पालन करें। मेरी ऐसी भावना/भावी योजना कल्पना है। गोवंश को भारत के राष्ट्रीय पशु रूप से मान्यता मिले ऐसी मेरी भावना है। यह सब होने की प्रतीक्षा में हैं।

मुझे बहुत वर्षों से पूर्वभास हो रहा था कि भारतीय महान् आध्यात्मिक संस्कृति तथा विशेषतः जैन आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान, देश-विदेश के विश्वविद्यालयों, वैज्ञानिक जगत् में हमारे शिष्य भक्तों के माध्यम से होगा। जब इस पूर्वभास को मेरे साधु शिष्यों को बताया, उन्होंने भी विश्वास नहीं किया। उनके विचार में यह था कि आप (आ. कनकनन्दी जी) तो इन-इन स्थानों पर जा नहीं सकते हो, धन के लिये कहते नहीं हो, कोई सरकार, संगठन, समिति, महासभा, बड़े उद्योगपति इसके लिये सहयोग करने की बात छोड़ो ऐसे कार्य के लिये रुचि तक नहीं है, तो यह कैसे होगा?! मैंने पहले से ही जो विचार किया था उस विचार को उन्हें कहा- “जैसे कि तीर्थकरों को केवलज्ञान होने पर देव आकर समवशरण की रचना करते हैं और मनुष्य, तिर्यज्व, देव आकर उपदेश सुनते हैं; बौद्ध धर्म का प्रचार सप्राट अशोक ने विदेशों में किया; ईसाई धर्म का प्रचार उनके अनुयायिओं ने किया; आचार्य श्री राम शर्मा का प्रचार गायत्री परिवार ने किया; रामकृष्ण परमहंस के उपदेश का प्रचार विवेकानन्द स्वामी ने किया; उसी प्रकार यह कार्य भी हमारे शिष्य- भक्तगण भी स्वेच्छा से करेंगे।” अथवा मेरा भाव-व्यवहार तो विश्व कल्याणकारी है ही अतः इस दृष्टि से मेरी तरफ से विश्व कल्याण हो ही रहा है। यह पूर्वभास भी कुछ वर्षों से सत्य सिद्ध हो रहा है। अभी तो और भी 1-2 वर्षों से मुझे विभिन्न निमित्तों के माध्यम से पूर्वभास हो रहा है कि यह सब महान् कार्य हमारे देश-विदेशों के ज्ञात-अज्ञात, जैन-अजैन भक्त-शिष्य-अनुयायी-गुणग्राही-उदारमना महानुभावों (बालक-बालिकायें, युवक-युवतियाँ, महिला-पुरुष, साधु-साध्वी, ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी दोनों संस्थान के कार्य कर्ता आदि) के माध्यम से, सहयोग से और भी अधिक से अधिक होगा तथा सहयोग करने वालों का भी विकास होगा उन्हें भी सुख-शान्ति-सम्वृद्धि मिलेगी।

ऐसा ही हमारे संघस्थ अन्यसंघ के साधु- साध्वी, ब्रह्मचारी आदि के बारे में

जो पूर्वाभास हुए उनमें से कुछ पूर्वाभास के बारे में बताया भी। वे प्रायः सब सत्य सिद्ध हुए हैं और हो रहे हैं और कुछ प्रतीक्षा में हैं। नामोल्लेख बिना संक्षिप्त वर्णनानुसार - संघ में आगमन, दीक्षा, प्रगति, रोग होना, रोग दूर होना या नहीं होना, समाधि, योग्य-साधु होना या नहीं होना, संघ से जाना-आना आदि के बारे में।

(7) मेरी पवित्र भावना/परिकल्पना/संकल्प- मेरी भावना है- मैं निस्पृही, निर्मोही, निर्लोभी, निर्भयी, साम्यभावी, समताधारी, सत्यग्राही, मौनधारी, एकान्त-शान्तनिवासी, निर्द्वन्द्व, स्वतन्त्र, आत्मानुशासी, निष्कषायी, उदार, विश्वकल्याणकारी, ख्याति-पूजा-लाभ-लोभ-प्रसिद्धि से रहित शान्त-सरल-नग्न-मृदु स्वभावी बनकर स्वात्मानन्द का सतत रसपान करूँ। जितना संभव हो अधिक से अधिक इसी ही भव में सत्य-समता-शान्ति की साधना से मोक्ष-सुख/निराकुल सुख का अनुभव करूँ। यह ही मेरी परम पवित्र भावना-परिकल्पना-संकल्पना है। इस अन्तरंग प्रमुख स्व-कल्याण की भावना की साधना के साथ-साथ आनुसंगिक रूप से अनुपूरक-परिपूरक रूप से विश्व के प्रत्येक सूक्ष्म से विशाल, एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय, पापी से लेकर पुण्यात्मा, विरोधी से लेकर भक्त तक, गुरु से लेकर शिष्य तक, नास्तिक से लेकर आस्तिक तक यहाँ तक कि अभव्य भी सुखी हो, शान्ति का अनुभव करे; विश्व मैत्री, विश्व शान्ति, विश्व कल्याण हो; सत्य-समता-शान्ति का सर्वत्र, सदा-सर्वदा-सर्वथा एक छत्र साप्राञ्ज्य रहे ऐसी मेरी पवित्र उदात्त भावना/परिकल्पना/संकल्प है। अन्त में-

विश्व कल्याण हो और पापी का भी पाप नाश।

आत्मिक सुख के द्वारा हो नाश दुःख का पाश (शाप)॥

- आचार्य कनकनन्दी

27-2-2010, रात्रि. 3-45, रामगढ़ (राज.)



परिशिष्ट -II

आध्यात्मिक - भावना

अनासक्ति से शुद्ध ध्यान -

नाहं कस्यपि मे कश्चिन्भ भावोऽस्ति बहिस्तनः।

यदैषा शेषुषी साधोः शुद्ध ध्यानं तदा मतम्॥ (69) अमि. श्राव.

'मैं किसी का नहीं हूँ, और न कोई बाहरी पदार्थ मेरा है,' ऐसी बुद्धि जब साधक के प्रकट होती है, तभी उसके शुद्ध ध्यान माना गया है।

राग-द्वेषादि के अभाव से ध्यान की योग्यता-

रागद्वेषमदक्रोधलोभमन्मथमत्सराः ।

न यस्य मानसे सन्ति तस्य ध्यानेऽस्ति योग्यता॥ (70)

राग-द्वेष मद क्रोध लोभ काम -विकार और मत्सर भाव जिस पुरुष के मन में नहीं होते हैं, उसके ध्यान कि योग्यता होती है।

राग-द्वेषादि से मन में अस्थिरता-

रागद्वेषादिभि क्षिप्तं मनः स्थैर्यं प्रचाल्यते ।

कांचनस्येव काठिन्यं दीप्यमानैर्हुताशनैः॥ (71)

राग-द्वेषादिक से विक्षिप्त हुए मन की स्थिरता चलायमान हो जाती है। जैसे कि दैदियमान अग्नि से सोने कि कठिनता भी पिघल जाती है।

कषाय सहित मन में ध्यान असंभव -

विद्यमाने कषायेस्ति मनसि स्थिरता कथम् ।

कल्पांतपवनैः स्थैर्यं तृणं कुत्र प्रपद्यते॥ (72)

मन में कषाय के विद्यमान रहने पर स्थिरता कैसे संभव है ? प्रलयकाल के पवन के द्वारा उड़ाये गये तृण स्थिरता को कहाँ पा सकते हैं।

शुद्धात्मा-ध्यान से कर्म कि निर्जरा -

अक्षय्यके वलालोकविलोकित चराचरम् ।

अनन्तवीर्यशर्मणिममूर्तमनुपदवम्॥ (73)

निरस्त कर्म संबंध सूक्ष्म नित्यं निरास्तवम् ।

ध्यायतः परमात्मानमात्मनः कर्म निर्जरा ॥ (74)

जिन्होंने अक्षय केवल ज्ञान के द्वारा सर्व चर-अचर जगत् को देख लिया है, जो अनन्त बल और सुख के धारक हैं, अमूर्त हैं, उपद्रव रहित हैं, जिन्होंने सर्व कर्मों के सम्बन्ध को दूर कर दिया है, मनःपर्यज्ञान के द्वारा भी नहीं जाना जाने से सूक्ष्म स्वरूपी है, नित्य है और कर्मों के आस्त्र से सर्वथा रहित है, ऐसे सिद्ध परमात्मा का ध्यान करने वाले जीव के कर्मों की निर्जरा होती है ।

स्वात्मा से स्वात्मा के ध्यान से मोक्ष -

आत्मानमात्मना ध्यायन्नात्मा भवति निर्वृतः ।

घर्षयन्नात्मनाऽऽत्मानं पावकी भवति द्रुमः ॥ (75)

आत्मा के द्वारा आत्मा को ध्याता हुआ यह आत्मा निवृत होता हुआ स्वयं सिद्ध परमात्मा बन जाता है । जैसे कि अपने आपसे घर्षण को प्राप्त हुआ वृक्ष अग्नि बन जाता है ।

देहादिक से आत्मा को भिन्न नहीं जानने वाले साधु को भी मोक्ष नहीं -

न यो विविक्तमात्मानं देहादिभ्यो विलोकते ।

स मज्जति भवांभोधौ लिगंस्थोऽपि दुरुत्तरे ॥ (76)

जो पुरुष देहादिक से अपने आप को भिन्न नहीं देखता है वह मुनि लिंग में स्थित होकर भी इस दुस्तर संसार-समुद्र में डूबता है ।

विपरीतज्ञ संसार में परिभ्रमण करता है -

सविज्ञानमविज्ञानं विनश्वरमनश्वरम् ।

सदानात्मीयमात्मीयं सुखर्द दुःखकारणम् ॥ (77)

अनेकमेकमंगादि मन्यमानो निरस्तधीः ।

जन्ममृत्युजरावर्ते बन्धमीति भवोदधौ ॥ (78)

जो अज्ञानी जीव अचेतन को चेतन मानता है, विनश्वर को अविनश्वर मानता

है, पराये को अपना मानता है, दुःख के कारण को सुखदायी मानता है और शरीर-रागादि अनेक विभिन्न पदार्थों को एक मानता है, वह जन्म जरा-मरण रूप भंवर वाले संसार -समुद्र में चिरकाल तक परिभ्रमण करता है ।

देहात्मा बुद्धि से बन्धन तो देहात्मा विभिन्नता से मुक्ति -

आत्मनो देहतोऽन्यत्वं चिन्तनीयं मनीषिणा ।

शरीरभारमोक्षाय सायकस्येव कोशतः ॥ (79)

य देहात्मैकताबुद्धिः सा मज्जयति संसृतौ ।

सा प्रापयति निर्वाणं य देहात्मविभेदधीः ॥ (80)

इसलिये शरीर के भार से मुक्ति पाने के लिये ज्ञानी जनों को तरकस से बाण के समान देह से आत्मा की भिन्नता का चिन्तवन करना चाहिये । देह में जो-2 आत्मा के एकत्र की बुद्धि हैं, वह संसार में डुबाती है और देह से आत्मा के भिन्नत्व की जो बुद्धि है, वह निर्वाण को प्राप्त कराती है ।

देह एवं आत्मा का अनुभव भिन्न-भिन्न ज्ञान से होने से दोनों में भिन्नता -

देहचेतनयोर्भेदो भिन्नज्ञानोपलब्धितः ।

सर्वदा विदुषा ज्ञेयश्चक्षुः ध्राणार्थयोरिव ॥ (82)

जैसे नेत्र का विषय रूप और ध्राण का विषय गन्ध ये दोनों भिन्न भिन्न हैं, इसी प्रकार भिन्न-भिन्न ज्ञान की उपलब्धि होने से शरीर और चेतन आत्मा का भेद भी विद्वान् को सदा ही जानना चाहिये ।

ज्ञान ज्ञेय सम्बन्ध तथा ज्ञान-ज्ञेय भेद के सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान भेद से ज्ञेय भेद होता है, जैसा कि प्रतिबिम्ब की भिन्नता से प्रतिबिम्बित होने वाला कि भिन्नता परिज्ञान होता है । इस न्यायानुसार देह तो इन्द्रिय ज्ञान से ज्ञात होता है और आत्मा स्वसंवेदन से ज्ञात होता है । इन्द्रिय ज्ञान से आत्मा अज्ञेय है और स्वसंवेदन से शरीर अज्ञेय है । इस प्रकार भिन्न ज्ञान से ज्ञात होने से देह एवं आत्मा भिन्न है । यथा रूप वर्ण आकार नेत्र से जाना जाता है तो गन्ध नासिका से जाना जाती है अतः

रूप-गन्ध भिन्न-भिन्न है। ऐसा भेद विज्ञान/विश्लेषण ज्ञान से शरीर आत्मा से भिन्न अनुभव में आता है। यथा-

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारे अन्तर भेदिया ।

वरणादि अरु रागादितें, निज भाव को न्यारा किया ॥

निज मांहि निज के हेतु निज कर, आपको आपै गद्दो ।

गुणगुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मँझार कछु भेद न रहो ॥ 8 ॥

अतः इन्द्रिय, यंत्रों से आत्मा का अनुभव/परिज्ञान संभव नहीं है। एतदर्थं तो आत्म संवेदन ही अनिवार्य है।

स्वात्मा ही स्व-निवास-स्थान-

पत्तनं काननं सौधमेषाऽनात्मधिया मतिः ।

निवासो दृष्टतत्त्वानामात्मैवात्स्यक्षयोऽमल ॥ (86)

मेरा निवास नगर है, वन है और भवन हैं, ऐसी बुद्धि आत्म ज्ञान से रहित मिथ्यादृष्टि जीवों के होती है। किन्तु जिन्होंने वस्तु-स्वरूप को जाना है, ऐसे आत्मदर्शी ज्ञानियों का निवास तो अक्षय निर्मल आत्मा ही है।

शुद्ध-जीव अमूर्तिक-

शुद्धस्यजीवस्यनिरस्तमूर्तेः, सर्वे विकाराः परकर्मजन्याः।

मेघादिजन्या इव तिग्रशमेर्विनश्वराः संति विभास्वरस्य ॥ (87)

अमूर्त शुद्ध जीव के राग-द्वेषादि सभी विकार भाव कर्मोदय जनित हैं। जैसे कि प्रकाशमान सूर्य के मेघादि जनित विनश्वर विभाव देखे जाते हैं।

आत्मज्ञ की धनादि से अनासक्ति -

दृष्टामतत्वो द्रविणादिलक्ष्मीं न मन्यते कर्मभवां स्वकीयाम्।

विपक्षलक्ष्मीं भुवने विवेकी प्रपद्यते चेतसि कःस्वकीयाम् ॥ (88)

जिस पुरुष ने आत्म तत्त्व को जाना है, वह कर्म जनित धनादि सम्पदा को अपनी नहीं मानता है। लोक में ऐसा कौन विवेकी पुरुष है जो अपने शत्रु की लक्ष्मी को मन में अपनी समझता हो।

ज्ञान दर्शनमयी शुद्ध चेतना ही स्वतत्त्व-

ज्ञान दर्शनमयं निरामयं मृत्युसंभवविकारवर्जितम् ।

आमनन्ति सुधियेऽत्र चेतनं सूक्ष्ममव्ययमपास्तकल्मषम् ॥ (89)

ज्ञानीजन तो जन्म मरण आदि विकारों से रहित, निरामय, सूक्ष्म, अव्यय और कर्ममल रहित ज्ञान-दर्शनमयी शुद्ध चेतना को ही अपना मानते हैं।

ध्यान से कोटि भवों के कर्म नाश-

अभ्यस्यतो ध्यानमन्यवृत्तेरित्थं विधानेन निरन्तरायम् ।

व्यपैति पापं भवकोटिबद्धं महाशमस्येव कषाय जालम् ॥ (93)

इस प्रकार पूर्वोक्त विधान से निरन्तराय ध्यान का अभ्यास करने वाले एकाग्रचित्त पुरुष के कोटि भवों के बंधे पाप नष्ट हो जाते हैं जैसे कि महान् प्रशमभाव के धारक के कषायों का समूह नष्ट हो जाता है।

तपोविधानैर्बहुजन्मलक्ष्मैर्यो दह्यते संचित कर्म राशिः ।

क्षणेन स ध्यानहुताशनेन प्रवर्तमानेन विनिर्मलेन ॥ (100)

धन्य पुरुष हैं ध्यानी-

निरस्तसर्वेन्द्रियकार्यजातो योदेहकार्यं न करोति किंचित् ।

स्वात्मीयकायोद्यतचित्तवृत्तिः सध्यानकार्यं विदधाति धन्यः ॥ (103)

जो पुरुष सर्व इन्द्रियों के विषयभूत कार्य समूह को दूर करके देह के कुछ भी कार्य को नहीं करता है और अपने आत्मीय कार्य के करने में उद्यत चित्तवृत्ति होकर ध्यान के कार्य को करता है, वह पुरुष धन्य है।

ध्यानी के लक्षण -

न रोषो न तोषो न मोषो न दोषो न कामो न कम्पो न दामो न लोभः ।

न मानो न माया न खेदो न मोहो यदीयेऽस्ति चित्ते तदीयेऽस्ति योगः ॥ (106)

जिसके चित्त में न द्रेष है, न राग है, न चोरी का भाव है, न अन्याय आदि कोई दोष है, न काम भाव है, न कम्पन है, न दंभ है, न लोभ है, न मान है, न माया, न खेद है और न मोह है; उसी पुरुष के चित्त में ध्यान हो सकता है।

परिशिष्ट - III

रहस्य के रहस्य

- आचार्य कनकनन्दी

समाधिविध्वंसविधौ पटिष्ठं न जातु लोकव्यवहारपाशंम्।
करोतियो निस्पृहचित्तवृत्तिः प्रवर्तते ध्यानममुष्य शुद्धम्॥ (108)

जो पुरुष समाधि के विध्वंस करने में अति कुशल ऐसे लोक-व्यवहार रूप जाल को कभी भी नहीं करता है, और जिसकी चित्तवृत्ति सर्व संसारी कार्यों से निष्पृह है उसी पुरुष के निर्मल ध्यान होता है।

विधीयते ध्यानमवेक्षमाणेयद्भू तबोद्धैरिह लोककार्यम्।
रौद्रं तदार्तं च वदिन्त सन्तः कर्मद्वमच्छेदनबद्धकांक्षा ॥ (109)

जो बोध रहित अज्ञानी पुरुष लौकिक कार्य की इच्छा रखते हुए ध्यान करते हैं, उसे कर्मरूप वृक्ष को छेदने में कमर बाँधकर उद्यत सन्त जन रौद्र और आर्तध्यान कहते हैं।

संसारिकं सौख्यमवासुकामैध्यानं विधेयं न विमोक्षकारि।
न कर्षणं सस्यविधायि लोके पलाललाभाय करोति कोऽपि ॥ (110)

मोक्ष के सुख को करने वाला ध्यान संसारिक सुख के पाने की इच्छा से ज्ञानियों को नहीं करना चाहिये। क्योंकि लोक में धान्य को उत्पन्न करने वाला कृषि कार्य कोई भी भूसे (पलाल) के लाभ के लिये नहीं करता।

अभ्यासमानं बहुधा स्थिरत्वं यथैति दुर्बोधमहीप शास्त्रम्।
नूनं तथा ध्यानमपीति मत्वाध्यानं सदाऽध्यस्यतु मोक्षु कामः ॥ (111)

जैसे अत्यन्त कठिन भी शास्त्र निरन्तर अनेक प्रकार से अभ्यास किये जाने पर स्थिरता को प्राप्त होता है/जाता है, उसी प्रकार से ध्यान को भी मानकर मुक्ति पाने के इच्छुक पुरुष को निश्चय से ध्यान का सदा अभ्यास करना चाहिये।

अवाप्य मानुष्यमिदं सुदुर्लभं करोति यो ध्यानमनन्यमानसः।
भनक्ति संसारदुरन्तपंजरं स्फुटं स सद्यो गुरुदुःखमन्दिरम् ॥ (112)

इस अतिदुर्लभ मनुष्यभव को पा करके जो मनुष्य एकाग्र चित्त होकर ध्यान को करता है, वह भारी दुःखों के गृहरूप इस दुःखदायी संसार पिंजर को शीघ्र भेदता है। □

(1) यथा वाचक है तो वाच्य है, प्रतिबिम्ब है तो बिम्ब है, प्रतिध्वनि है तो ध्वनि है, ज्ञान है तो ज्ञेय है/ज्ञेय है तो ज्ञान है तथा कुछ भी परम महानता-श्रेष्ठता-विकास-उन्नति-ज्ञान-सुख-शान्ति-आध्यात्मिकता आदि है तो उसे कोई न कोई अवश्य प्राप्त किया हो कर रहा हो या करेगा। यदि ऐसा नहीं है तो उसका अस्तित्व नहीं है/असत्य है/मिथ्या है।

(2) यदि किसी के मन में पवित्र भाव दृढ़ता से सतत उत्पन्न होते हैं तो वह अवश्य उस भावित लक्ष्य को प्राप्त करेगा ही। जहाँ सपना है, वहाँ साकार है, जहाँ पवित्र भाव है, वहाँ सद्भाव (होना, प्राप्ति) है।

(3) भले बाह्य भौतिक उपलब्धि के लिए धन, जन की आवश्यकता अनिवार्य हो या अत्यधिक हो अतः उसकी प्राप्ति करने के लिए बाह्य में शारीरिक-भौतिक-वाचनिक आदि अधिक जुगाड़-संग्रह, दौड़-धूप, जोड़-तोड़, तनाव-शरीर श्रम अधिक करना पड़ता है तथापि आन्तरिक आध्यात्मिक उपलब्धियों (आत्म-विश्वास, आत्म-ज्ञान, आत्म-सुख, आत्म-शक्ति आदि) के लिए इन सबकी आवश्यकता कम है या नहीं चाहिए अथवा पूर्णतः त्याग की अनिवार्यता है। अतः अन्तरङ्ग उपलब्धियाँ सरल-सहज-स्थायी हैं तथापि दुर्लभ हैं; बाह्य उपलब्धियाँ कठिन-श्रमसाध्य-अस्थायी हैं तथापि सुलभ हैं तो भी मोही-अज्ञानी व्यक्ति बाह्य उपलब्धियों को ही चाहता है, प्राप्त करना चाहता है किन्तु आध्यात्म महापुरुष नहीं।

(4) प्रत्येक जीव सुख चाहता है क्योंकि सुख उसका मूल स्वभाव है। आत्मिक सुख जीव का स्वभाव है तो भौतिक सुख विभाव है। ऐसा ही आत्मानुभव (स्वात्मलीनता) स्वभाव है तो अहङ्कार विभाव; सिद्धि स्वभाव तो प्रसिद्धि विभाव; आत्म-वैभव (आत्म-विश्वास-ज्ञान-सुख-वीर्य) स्वभाव है तो सांसारिक वैभव

विभाव है। ऐसी परिस्थिति में भी जैसा कि आँख स्वयं को नहीं देखती है बिना बाह्य वस्तु को देखती है, वैसा ही मोही जीव स्वयं को/स्वभाव को त्यागकर बाह्य विभाव को प्राप्त करना चाहता है अतः वह दुःखी होता है।

(5) आधुनिक भौतिक विज्ञान केवल जड़ पदार्थ की कुछ स्थूल शक्ति कारण/प्रयोग से इतना चमत्कार कर रहा है तो अमूर्तिक-आध्यात्मिक-चैतन्य चमत्कार की सम्पूर्ण अनन्त शक्ति की कल्पना तो मानव मस्तिष्क से परे है।

(6) यथा सूर्य-रश्मि के सम्बन्ध से कमल खिलता है, कुमुदनी नहीं, तथा योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को प्राप्त करके योग्य व्यक्ति महान् कार्य करता अयोग्य नहीं।

(7) दिशा-दशा के कारण जिस प्रकार सूर्य किरण विभिन्न रंग (7 रंग) दिखाई देती है उसी प्रकार भावना-लक्ष्य के कारण पदार्थ/सत्य अलग-अलग रूप से अनुभव में आता है/दिखाई देता है। परम-भावना-परम-ज्ञान से ही पदार्थ-सत्य का सम्पूर्ण अनुभव होता है।

(8) अनन्त अमूर्तिक आकाश चक्षु से सीमित तथा नीला दिखाई देता है वैसा ही इन्द्रिय, मन-यन्त्र से अनन्त सत्य भी सीमित -अयथार्थ दिखाई देता है। शुद्ध चेतना शक्ति अनन्त होने से शुद्ध चेतना ही पूर्ण सत्य को समग्रता से जानती है।

(9) अनादि अनन्त काल से जीव अनन्त भवों में भौतिक कर्मबन्ध से भौतिक शरीर-सम्पत्ति-भोग-उपभोग को भोगता हुआ इतना संस्कारित-अभ्यस्त होने से जीव इन भौतिक शरीरादि को ही स्वरूप मानकर उनके संरक्षण-संवर्धन-उपार्जन-भोग- उपभोग में ही अस्त-व्यस्त-मस्त-संत्रस्त होता है।

(10) मोही-अज्ञानी जीव तो दूसरों को/संसार को सुधार करके, भगवान् प्रसन्न करके सुखी होना चाहता है परन्तु निर्मोही-ज्ञानी स्वयं को सुधार करके तथा दूसरों को कष्ट न पहुँचाकर सुखी होता है।

(11) जिस प्रकार कि आकाश शब्द में तथा दृश्यमान नील गुम्बदाका खाली जगह आकाश नहीं है उसी प्रकार शब्द, पद, भौतिक प्रतीक, स्थान, बाह्य

आध्यात्मिक क्रिया-काण्ड, पर्व-त्यौहार आदि में आध्यात्मिक धर्म नहीं है किन्तु जिस त्यौहार अमूर्तिक आकाश अनन्त सर्वव्यापी है उसी प्रकार आध्यात्मिक धर्म अनन्त त्यौहार की पवित्रता है।

(12) जैसा कि योग्य वट बीज में हजारों टन का वट वृक्ष शक्ति रूप में सुप्त-वृक्ष रूप में विद्यमान है वैसा ही भाव-बीज में विशाल भावी योजनाएँ उपलब्धियाँ सीमित रूप में, सुप्त रूप में विद्यमान रहती है, योग्य द्रव्य-क्षेत्र-कालादि प्राप्त करते ही प्रगट होती जाती है।

(13) बीज बोये बिना केवल जमीन खोदना, जल सींचना, खाद देना, बाड़ लगाना आदि से ही जैसा कि फल प्राप्त नहीं होता है वैसा ही पवित्र आध्यात्मिक-भाव-व्यवहार के बिना केवल बाह्य समय-साधन-श्रम से आत्मोपलब्धि रूप विभाव की प्राप्ति सम्भव नहीं होती है।

(14) विज्ञान के चमत्कार से भौतिक चकाचौंध सम्भव है किन्तु चैतन्य चमत्कार में आत्मशान्ति से लेकर विश्वशान्ति सम्भव है।

(15) गोबर का कीड़ा (गोबरिल) जिस प्रकार गोबर के लिए परिश्रम करता ही लड़ता है उसी प्रकार मोही-रागी-अज्ञानी भौतिक-वैभव के लिए परिश्रम करता है, पाप करता है।

(16) एक सत्य के समक्ष लाखों-करोड़ों असत्य भी मिथ्या है, हेय है, त्यजनीय है उसी प्रकार एक आत्मा के समक्ष प्रचुर भी भौतिक उपलब्धियाँ मिथ्या हैं, हेय है, त्यजनीय है।

(17) भाव से भाग्य (कर्म) का निर्माण होता है तथा भाग्य से सुख-दुःख, अनि-लाभ, सफलता-असफलता, जन्म-मृत्यु आदि प्राप्त होते हैं अतः जीव स्वयं, स्वयं का भाग्य निर्माता तथा सुख-दुःखादि का प्रदाता है।

(18) विश्वकल्याण के भाव-व्यवहार करते हुए दूसरों के दोषों को ग्रहण नहीं करना तथा दूसरों के कारण स्वयं में दोष उत्पन्न नहीं करना स्व-पर-विश्व कल्याण है। क्योंकि विश्व के प्रत्येक जीव तो पवित्र-निर्दोष-शान्त हो नहीं सकते

हैं ऐसी परिस्थिति में दूसरों के दोषों को ग्रहण नहीं करना तथा दूसरों के कारण स्वयं दोषी नहीं होना स्वयं की तरफ से ही विश्व-कल्याण है। यथा-पृथ्वी से तो पूर्णतः कांटा, कड़क आदि दूर नहीं हो सकते हैं तथापि स्वयं ही उससे बचना, स्वयं की तरफ से पृथ्वी को निष्कर्षक, कड़क रहित बनाना है। इसे ही कहते हैं- “आप भला तो जग भला”, “आदहिं कादव्वं यदि चेत् परहिं कादव्वं”, “उद्धरयेत् आत्मनमात्मनः न आत्मनः अवसादयेत्” स्व-पर-विश्व कल्याण।

परिशिष्ट - IV

आ. कनकनन्दी के अध्ययन-अध्यापन के कुछ विषय

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ने अभी तक (1) भाषा (14 भाषा), (2) व्याकरण (3) गणित (4) विज्ञान (5) दर्शन (6) धर्म (7) तर्क-न्याय (8) आयुर्वेद (9) मनोविज्ञान (10) पुराण (11) इतिहास (12) कथा साहित्य (13) राजनीति (14) कानून-न्याय (15) शिक्षा-मनोविज्ञान (16) स्वप्न (17) शकुन (18) सामुद्रिक शास्त्र (बॉडी-लैंगवेज) (19) मन्त्र (20) समाज शास्त्र (21) संविधान (22) शोधपूर्ण समीक्षात्मक साहित्य (23) विभिन्न पत्र-पत्रिकायें (24) वैज्ञानिक टी.वी. चैनल (25) कोष आदि का अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ इन विषय सम्बन्धी शोधपूर्ण लेख, शास्त्र भी लिखे हैं और लिख रहे हैं और लिखने की भावना है। विस्तार भय से यहाँ केवल विधाओं तथा आनुमानिक प्रतिशत का ही उल्लेख किया गया है।

- (1) देश-विदेश की 14 भाषा-ज्ञान तथा कुछ नये भाषा-ज्ञान के प्रयास।
- (2) उपरोक्त भाषा सम्बन्धी अधिकांश भाषा विषयक व्याकरण ज्ञान और भी व्याकरण-ज्ञान के लिए प्रयास।
- (3) लौकिक गणित के साथ-साथ अलौकिक गणित ज्ञान; में रुचि तथा और भी अधिक गणित ज्ञान की जिज्ञासा।

(4) प्रायः विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में रुचि तथा और भी अधिक विज्ञान जानने की जिज्ञासा।

(5) प्रायः भारत के सम्पूर्ण दर्शनों तथा विदेशी दर्शनों का अध्ययन तथा आगे प्रयास।

(6) दि. जैन ग्रन्थों के प्रायः 85 % से 90 % श्वे. जैन ग्रन्थों के प्रायः 70 % से 75 %, वैदिक ग्रन्थों के प्रायः 50 % से 60 %, बौद्ध ग्रन्थों के 70 % से 75 % का अध्ययन के साथ-साथ आगे के अध्ययन के लिए प्रयास।

(7) जैन-जैनेतर कतिपय तर्क-न्याय-अनेकान्त-स्याद्वाद शास्त्रों के अध्ययन। अभी विशेषतः अनेकान्त-स्याद्वाद सम्बन्धी विशेष अनुसंधानात्मक वैज्ञानिक एकोण से अध्ययन-अध्यापन-लेखन सतत प्रवाहमान्।

(8) आयुर्वेद-चिकित्सा-स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से दि. जैन ग्रन्थ कल्याण-तारक, वैदिक ग्रन्थ-चरक, सुश्रुत, योगरत्नाकर, माधव निदान, बौद्ध ग्रन्थ-मण्डङ्ग हृदय, प्राकृतिक चिकित्सा, भोजन चिकित्सा तथा विभिन्न चिकित्साओं कतिपय साहित्यों के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, योग चिकित्सा आदि कुछ ग्रन्थों का अध्ययन आचार्य श्री ने किया है; और अभी शोधपूर्ण तुलनात्मक एकोण से सनप्र प्रयासरत हैं।

(9) विभिन्न विधाओं के प्राचीन एवं आधुनिक मनोविज्ञान की अनेक शाखा-शाखाओं का अध्ययन तथा अभी भी प्रयत्नशील।

(10) दि. जैन, श्वे. जैन, वैदिक, बौद्ध के अनेक पुराणों का अध्ययन।

(11) विविध प्रकार के इतिहासों का अध्ययन।

(12) देश-विदेश की धार्मिक-नैतिक-राजनैतिक, काल्पनिक, वैज्ञानिक विधाओं का अध्ययन।

(13) प्राचीन जैन, वैदिक राजनीति ग्रन्थों के साथ-साथ देश-विदेशों की राजनीतियों का अध्ययन हुआ है और अभी भी चालू है।

(14) प्राचीन जैन, वैदिक न्याय (कानूनी) ग्रन्थों के साथ-साथ देश-

विदेशों के कानूनी साहित्य का अध्ययन हुआ है और अभी भी चालू है।

(15) देश-विदेशों की प्राचीन एवं आधुनिक शिक्षा पद्धतियों का अध्ययन के साथ-साथ इस सम्बन्धी शोधपूर्ण तुलनात्मक-समीक्षात्मक अध्ययन सतत प्रवाहमान है।

(16) दि. जैन, श्वे.जैन, वैदिक, आयुर्वेदिक, आधुनिक मनोवैज्ञानिक स्वप्न साहित्यों का अध्ययन हुआ है और हो रहा है।

(17) जैन-जैनेतर-आधुनिक वैज्ञानिक शकुन (पूर्वभास, पूर्वानुमान) सम्बन्धी विषयों का अध्ययन साहित्य एवं प्रकृति से सतत प्रवाहमान है।

(18) जैन, हिन्दु, बौद्धों के कुछ ग्रन्थ, आधुनिक देश-विदेशों के कुछ सामुद्रिक शास्त्रों का अध्ययन हुआ है और हो रहा है।

(19) धार्मिक, मनोवैज्ञानिक एवं आधुनिक दृष्टि से मन्त्र के बारे में अध्ययन।

(20) कुछ प्राचीन एवं आधुनिक समाज साहित्य का अध्ययन, धार्मिक-सामाजिक-मनोवैज्ञानिक दृष्टि से।

(21) भारत तथा कुछ विदेशी संविधानों का अध्ययन चालू।

(22) धर्म, विज्ञान, स्वास्थ्य, मनोविज्ञान, दर्शन, इतिहास, पर्यावरण सुरक्षा, राजनीति, कानून, तर्क, परम्परा, रीति-रिवाज, भाषा, गणित, पूजा-आराधना, योग-ध्यान आदि के शोधपूर्ण समीक्षात्मक अनेक साहित्यों का अध्ययन हुआ है और हो रहा है।

(23) विभिन्न दैनिक, सासाहिक, मासिक आदि विविध विधाओं की पत्र-पत्रिकाओं का सतत अध्ययन।

(24) विशेषतः पाश्चात्य देशों में विविध ज्ञान-विज्ञान-इतिहास-धर्म-परम्परादि सम्बन्धी शोधपूर्ण विषयों को (1) डिस्कवरी (2) नेशनल ज्योग्राफि (3) हिस्ट्री (4) एनिमल प्लेनेट जैसे विदेशी टी.वी. (T.V.) प्रोग्रामों का विशेष अध्ययन।

(25) विभिन्न भाषा, धर्म, विज्ञान, इतिहास सम्बन्धी कोषों का सामान्य आलम्बन।

अभी विशेष अध्ययन-अध्यापन-लेखन-प्रचार

आधुनिक-नवीन वैज्ञानिक अनुसन्धान, स्वप्न, शकुन (पूर्वभास), मानव-इतिहास; मानव-विज्ञान, भारतीय-आध्यात्मिक-संस्कृति-परम्परा, मानव, स्वास्थ्य, राजनीति, कानून का अध्ययन-लेखन; भारतीय आध्यात्मिक-संस्कृति का भारतीय विश्वविद्यालयों से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार-प्रसार के माध्यम से विश्व-मैत्री-विश्व-शान्ति की स्थापना। धर्म को आध्यात्मिक-विज्ञानमय एवं विज्ञान को आध्यात्मिक धर्ममय बनाना और इससे अभी की भावनायें एवं भावी भावनाओं को क्रियान्वयन के सोदेश्य विचार।

भावी-भावनायें

भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति तथा विशेषतः जैन ज्ञान-विज्ञान-अध्यात्म को आधुनिक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में तथा इससे परे सिद्ध करके इसे स्व-पर-विश्वकल्याण के लिए देश-विदेश की प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा, विज्ञान, कानून, राजनीति, समाज व्यवस्था, स्वास्थ्य, पर्यावरण सुरक्षा आदि में प्रयोग में लाकर सर्व जीव हित, सर्व जीव सुख, निरस्त्रीकरण, विश्व-शान्ति की स्थापना आचार्य श्री कनकनन्दी जी के परम, सर्वोच्च लक्ष्य है। स्वयं को परम सत्य साम्य सुख रूप परिणमन करना तथा अखिल जीव जगत् भी ऐसी साम्य अवस्था को प्राप्त करें ऐसी महती मंगलमयी विश्व-कल्याण की पवित्र भावना है। “सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु।”

परिशिष्ट- V

सत्परामर्श

सदुदेश्य की पूर्ति-शान्ति की प्राप्ति के सूत्र

-आचार्य कनकनन्दी

1. सदुदेश्य (सत्+उदेश्य = सच्चा, अच्छा लक्ष्य) शान्ति की रुचि, तदनुकूल परिज्ञान तथा सम्यक् सम्पूर्ण पुरुषार्थ से सदुदेश्य की पूर्ति एवं शान्ति की प्राप्ति होती है।

2. सत्-समतामय उदेश्य ही सदुदेश्य है और तदनुकूल आत्म विश्वास-ज्ञान-आचरण के अनुपात से सदुदेश्य की पूर्ति तथा शान्ति की प्राप्ति होती है।

3. एतद् सम्बन्धी रुचि स्व-जागृति से तथा रुचिवन्त पुरुषों की प्रेरणा से उत्पन्न होती है।

4. रुचि होने से तत् सम्बन्धी ज्ञानार्जन में उत्साह होता है तथा तदनुकूल आचरण में प्रवृत्ति होती है।

5. संकीर्णता-स्वार्थपरता-पूर्वाग्रह-परपीडन-मानसिक विभ्रम से रहित रुचि ही यथार्थ रुचि है, जो कि आत्मविश्वास मय है।

6. आत्मविश्वास से स्वनिहित शक्ति की जागृति होती है, ज्ञान में परिपक्वता आती है तथा आचरण में दृढ़ता आती है।

7. सत्रम सत्यग्राहिता से सत्य के सम्पूर्ण पक्षों (स्वभाव, अवस्थाओं) के अनुभव से यथार्थ ज्ञान होता है।

8. आत्मविश्वास तथा यथार्थ ज्ञान से युक्त होकर समता पूर्वक आचरण करना ही सम्यक् पुरुषार्थ है।

9. अन्धविश्वास-पक्षपात-संकीर्णता-पूर्वाग्रह-दुराग्रह से रहित, पवित्र भाव (क्रोध-मान-माया-लोभ-भय-कामादि भाव रहित) सहित आचरण ही समता है।

10. समतामय विचार ही सही विचार है, समतामय निर्णय ही सही निर्णय (न्याय, कानून, फैसला) है, समतामय कथन ही सही कथन है तथा समतामय लेखन ही सही लेखन है, एवं आचरण ही सही आचरण/चारित्र है/नैतिक आचरण है/शालीन-भद्र व्यवहार है।

11. हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह को क्रोध-मान-माया-लोभ से प्रेरित होकर मन-वचन-काय से तथा कृत-कारित-अनुमोदना से नहीं करना भी समता/सदाचार है।

12. ब्रह्माण्ड के अनन्त सत्यों में से स्व-शुद्धात्म सत्य ही स्वयं के लिए परम उपादेय है अतः स्व-आत्मरुचि-विश्वास, ज्ञान एवं आचरण ही यथार्थ से सम्यक् रुचि-विश्वास एवं आचरण है। अतः इससे ही सदुदेश्य की पूर्ति एवं शान्ति की प्राप्ति होती है।

13. शान्ति स्वयं में ही अनुभव होती है, अतः शान्ति स्वयं में ही है, बाहर में, दूसरों में नहीं है। अतः यह बाह्य में, दूसरों में है ऐसा विश्वास-ज्ञान-आचरण ही यथार्थ से अन्धविश्वास-अज्ञानता-भ्रष्टाचार है।

14. सदुदेश्य-शान्ति से विपरीत सब हेय है तो इनकी प्राप्ति उपादेय है तथा सब कुछ ज्ञेय है।

15. स्वयं में शान्ति होने से और प्रत्येक जीव के अन्तिम उदेश्य शान्ति की प्राप्ति होने से स्वयं की प्राप्ति ही सदुदेश्य की प्राप्ति है। इसके अतिरिक्त-विपरीत सब कुछ यथार्थ से असदुदेश्य, उसकी पूर्ति असत्यपूर्ति है और उससे प्राप्त होती है अशान्ति। अतएव इनकी पूर्ति करने वाले चाहे राव से रङ्ग हो या शिक्षित से अशिक्षित, सब अशान्त होते हैं।

इसके भूतकाल के हजारों उदाहरण देश-विदेशों के इतिहास-पुराणों में लिपिबद्ध है तो वर्तमान में जीवन्त-ज्वलन्त उदाहरण करोड़ों में है। इन प्रायोगिक उदाहरणों से तो सदुदेश्य-शान्ति की रुचि वाले कुछ कम संख्यक महानुभाव-महोदय शिक्षा लेकर शान्ति प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करते हैं, किन्तु अधिक संख्यक वाले इन सब से वज्ज्वित रहते हैं। इसके कारण ही जीव अन्याय, अत्याचार,

पापाचारादि करके अशान्त रहते हैं किन्तु जो सदुदेश्य की पूर्ति करते हैं वे शान्ति को पाते हैं।

16. जैसा कि बिन्दुओं के अविच्छिन्न सम्यक् समन्वय से ही रेखा का निर्माण होता है वैसा ही सदुदेश्य की पूर्ति एवं शान्ति की प्राप्ति रूपी रेखा का निर्माण जीवन के हर छोटे-बड़े सही उद्देश्य, विचार, शिक्षण, प्रशिक्षण, शिक्षा-दीक्षा, संस्कार, कर्तव्य, व्यवहार, भाषण-संभाषण, वचन-प्रवचन, आत्म-विश्लेषण, आत्मशोधन, आत्मध्यान, पुरुषार्थ, सहयोग, समन्वय, सदाचार आदि से होता है।

17. जैसा कि अलग-अलग बिन्दुओं से भी रेखा नहीं बनती है, वैसा ही सद्-उद्देश्य, विश्वास, ज्ञान, पुरुषार्थ आदि अलग-अलग हैं/समन्वय नहीं है तो सद्-उद्देश्य की पूर्ति एवं शान्ति की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

18. जैसा कि बिन्दुओं के समन्वय/जोड़ने में दिशा/डिग्री में परिवर्तन होने से रेखा सरल/90° वाली रेखा नहीं बनती है, वैसा ही सदुदेश्य, आत्म-विश्वास, सम्यक् ज्ञान, सत्पुरुषार्थ का सम्यक् समन्वय नहीं होता है तो सदुदेश्य की पूर्ति एवं शान्ति की प्राप्ति नहीं होती है। अतः आत्मविश्वास, सच्चा ज्ञान, सही पुरुषार्थ का सम्यक् समन्वय से ही सदुदेश्य की पूर्ति एवं शान्ति की प्राप्ति के वैशिक-सार्वभौम सूत्र हैं।



परिशिष्ट - VI

वि. वि. में आ. कनकनन्दी साहित्य कक्ष की
स्थापना एवं शोधकार्य

संस्थापक एवं शोध निर्देशक-

Prof. (Dr.) Sohan Raj Tater

(B.E. (Mech.) ME.(P.H.), M.A. (Jainology), Ph. D., Pursuing D.
Litt.)

प्रो. डॉ. सोहन राज जी तातेड़ (उपकुलपति)-

आचार्य श्री कनकनन्दी जी द्वारा स्थापित संस्था के नवीन संरक्षक तथा आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी के भक्त को -

1. न्यू एज इन्टरनेशनल यूनिवर्सिटी यू. एस. ए. द्वारा कोलकाता में 'डी. लिट.' की उपाधि ।

2. 'राष्ट्रीय शिक्षक श्री' की उपाधि- राष्ट्रीय स्वतन्त्र मञ्च (अखिल भारतीय कंग्रेस) दिल्ली द्वारा प्रदान ।

— Former Vice Chancellor, Singhania University.

— Ph.D. Research Supervisor in Universities.

— Former member, B.O.M., J.V.B.U. Ladnun (Raj.)

— Former director, Brahmi Vidyapith College Ladnun (Raj.)

— Honourary Editor, Preksha Dhyan Magazine, Ladnun (Raj.)

— Retired Superintending Engineer, P.H.E.D., Raj. Govt.

— Former convener, Parmarthik Shikshan Sansthan, Ladnun (Raj.)

— Former Advisor, J. V. B.U., Ladnun (Raj.)

डॉ. तातेड़ जी के साहित्य-

1. The Jain Doctrine of Karma and the Science of Genetics.

2. Enlightened Knowledge.

प. पू. श्रद्धेय आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के साहित्य की स्थापित -

“Book cells”

1. राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

2. तथा सेठ मोतीलाल पी. जी. कॉलेज, झुंझुनु (संस्थापक एवं शोध निर्देशक)
डॉ. बी. एल. सेठी 09414743340
3. जैन विश्व भारती वि. वि. लाडनूँ (राज.)
प्रो. जे. पी. एन. मिश्रा 09414342003
4. एल. डी. इन्स्टीट्यूट, अहमदाबाद (गुज.)
डॉ. जितेन्द्र बी. शाह 09825800126
5. जयनारायण व्यास वि. वि. जोधपुर (राज.)
डॉ. चन्द्रशेखर 09828082560
6. अखिल भारतीय दर्शन परिषद्, जबलपुर (म.प्र.)
प्रो. एस. पी. दुबे 09229132699
7. बनारस हिन्दू वि. वि., वाराणसी (उ. प्र.)
डॉ. विजय कुमार जैन 09450240359
8. तीर्थकर वर्धमान वि. वि. मुरादाबाद (उ. प्र.)
डॉ. आर. के. मित्तल 09837933666
9. सिंधानिया वि. वि. पचेरी बड़ी, झुंझुनु (राज.)
प्रो. योगेश कुमार शर्मा 09982609201
09414347157
10. जोधपुर राष्ट्रीय वि. वि., जोधपुर (राज.)
डॉ. प्रदीप कुमार डे 09351590734
11. गुजरात वि. वि., अहमदाबाद (गुज.)
डॉ. दिलीप चारण 09825148840
12. श्रीधर वि. वि., पिलानी (राज.)
डॉ. श्यामसुन्दर पुरोहित 09617200650
13. आर. सी. एस. एस. कॉलेज, वीहट (बिहार)
डॉ. विद्यासागर सिंह 09973747234
14. लखनऊ वि. वि., लखनऊ (उ. प्र.)
डॉ. अमरजीत यादव 09415774470
15. मोहनलाल सुखाड़िया वि. वि., उदयपुर (राज.) लायब्रेरियन
16. विक्रम वि. वि., उज्जैन (म.प्र.) डॉ. वीरबाला छाजेड़
17. एन. एम. आर. इंजी. कॉलेज, हैदराबाद (आ. प्र.)
श्री किरण कुमार जैन(वैज्ञानिक) 09502162631
18. मुम्बई विश्व विद्यालय, मुम्बई (महा.)
19. जम्मू विश्व विद्यालय, (जम्मू-कश्मीर)
20. कोलहान यूनिवर्सिटी, चायवास
जमशेदपुर (करीम सिटी कॉलेज लायब्रेरी) प्रो. अशरफ बिहारी
21. पंजाबी वि. वि., पटियाला (पंजाब)
22. पंजाब वि. वि., चंडीगढ़ (पंजाब, हरियाणा)
23. आन्ध्र वि. वि., विशाखापट्टनम् (आ. प्र.)
24. एम. डी. एस. डी. गल्स कॉलेज, अम्बाला सिटी (पंजाब)
25. लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली
26. बाहुबली प्राकृत संस्थान, श्रवणबेलगोला
27. एस. के. सोमैया जैन स्टडी सेन्टर, मुरब्बई
28. महात्मा गाँधी ग्रामोदय वि.वि., चित्रकूट (म.प्र.)
29. टिबरवाल यूनिवर्सिटी, झुंझुनु (राज.)
30. महात्मा ज्योतिबा फुले वि.वि., जयपुर (राज.)
31. भगवन्त वि.वि., अजमेर (राज.)
32. Amity University, Jaipur (Raj.)
(भारत का प्रथम ग्रेड का वि.वि.)

परिशिष्ट-VII

आध्यात्मिक-अष्टक

-आचार्य कनकनन्दी

मैं आत्मा सच्चिदानन्द, ऐसा हो आत्मविश्वास।
देहादि भौतिक जड़, ऐसा हो सत् विश्वास ॥1॥

आनन्द घन है मेरा रूप, सत्यशिव स्वरूप ।
निर्विकल्प चेतना मैं, दिखता है यह स्वरूप ॥2॥

राग और द्वेष-मोह, होता जब निर्विशेष ।
निर्विकल्प होता है, चेतना का शुद्ध स्वरूप ॥3॥

शुद्ध स्वरूप ही ब्रह्म है, जिनेन्द्र और ईश्वर।
चिदानन्दमय निर्विकार निरञ्जन अविकार ॥4॥

जिस भी किसी उपाय से, होता यह आत्मज्ञान।
सो ही ज्ञान ही सच्चा ज्ञान, अन्य सब विभ्रमज्ञान ॥5॥

आत्म पावन के कारण, होता है बाहर धर्म ।
आत्म पावन के बिना, होता है सब अधर्म ॥6॥

अन्दर पावन होने से, पावन बाहर होय।
सुमन मैं हो तो सुगन्धी, बाहर महके सोय ॥7॥

पावन भावना जाकी, पावन जीवन कारज ।
पावन भावना के बिना, व्यर्थ हुए सब काजक ॥8॥

परिशिष्ट- VIII

साक्षरता-ज्ञान एवं सच्चा-ज्ञान की उपलब्धियाँ

(साक्षरता से भौतिकता-सभ्यता-विनाश तो सच्चा ज्ञान से शान्ति-निर्माण तथा निर्वाण)

-आचार्य कनकनन्दी

साक्षरता (शिक्षा-पढ़ाई-परीक्षा-परिणाम-डिग्री-प्रमाणपत्र) की चमक-चकाचौंध में आज मानव तथा विशेषतः भारतीय इतने चौंधिया गये है कि उन्हें यथार्थ ज्ञान (नैतिकज्ञान, सर्वोदयी शिक्षा, आध्यात्मिक ज्ञान) का परिज्ञान ही नहीं हो रहा है। साक्षरता केवल जानकारियों का मस्तिष्क में संग्रह/रटन्त विद्या है तो सच्चा ज्ञान सत्य-तथ्य का परिज्ञान-अनुभव-आचरण। साक्षरता का आधार पुस्तक है तो सच्चा ज्ञान का आधार आत्म विश्लेषण, आत्म-परिज्ञान, ध्यान, आत्मानुसन्धान। शिक्षा एकांगी, संकीर्ण, भौतिक है तो ज्ञान बहुआयामी, बहु उद्देशयीय। शिक्षा के लिए पढ़नी पड़ती है तो ज्ञान के लिए आत्म-जागृती की आवश्यकता है। शिक्षा की सीमा होती है तो ज्ञान अनन्त होता है। शिक्षा शिक्षक से ग्रहण किया जाता है तो ज्ञान आध्यात्मिक गुरु से प्राप्त होता है। शिक्षा अनेक प्रकार की होती है तो आत्मज्ञान एक होने पर भी उसमें समस्त शिक्षाएँ एक कण भर मात्र है। शिक्षा में तथा शिक्षा से अहंकार, संकीर्णता, स्वार्थपरता आदि होती है तो आत्मज्ञान से इन सब की निवृत्ति होती है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावादि के कारण शिक्षा में परिवर्तन होता है तो आत्मज्ञान शाश्वतिक-अपरिवर्तनशील है। शिक्षा बौद्धिक है तो आत्मज्ञान आत्मिक है। शिक्षा ग्रहण की जाती है तो ज्ञान आत्मा से प्रगट होता है। शिक्षा भौतिक सुख-सुविधा-साधन को बढ़ाती है तो ज्ञान चित्त की पवित्रता-एकाग्रता-शान्ति को बढ़ाता है। शिक्षा का बोझ-तनाव-दुरुपयोग होता है तो ज्ञान से शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक सुख-शान्ति-संवृद्धि होती है। शिक्षा से व्यक्ति विशिष्ट (सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-प्रभुत्व सम्पन्न-असामाजिक-

पृथकत्ववादी) होता है तो ज्ञान से व्यक्ति उपरोक्त विशेषणों से रहित सरल-सहज-सादा जीवन-उच्च विचार-उदार पुरुषाणां बसुधैव कुटुम्बकम् वाला होता है। शिक्षा से कुप्रवृत्ति भी होती है परन्तु ज्ञान से कुप्रवृत्ति से निवृत्ति तथा सुप्रवृत्ति से प्रवृत्ति होती है। साक्षरता से विनम्रता कम अहंवृत्ति अधिक होती है। क्योंकि शिक्षा बाहर से थोपी जाती है जिससे आन्तरिक परिवर्तन नहीं होता है। आत्मज्ञान आन्तरिक प्रक्रिया है जिससे आत्मा में गरिमामय गुणों का सञ्चार होता है, जिससे ज्ञानी, विनम्र, सत्यग्राही, दयालु कोमल होते हैं। शिक्षा से व्यक्ति साक्षर, शिक्षित, बुद्धिजीवी, सभ्य, वर्चस्व, सामाजिक प्रतिष्ठा वाला होता है तो ज्ञान से जीव ज्ञानी, सुसंस्कृत, सदाचारी, आध्यात्म सम्पन्न, पूजनीय, श्रद्धास्पद होता है। शिक्षित तो चार्वाक जैसे पढ़े-लिखे होते हैं तो ज्ञानी तीर्थङ्कर, केवली, गणधर, साधु-सन्त जैसे होते हैं।

शब्द ब्रह्म/शब्दज्ञान साधन है तो परब्रह्म/आत्मज्ञान/सत्यज्ञान साध्य-लक्ष्य-प्राप्य (प्राप्त करने योग्य) है। यथार्थ ज्ञान के लिए साक्षरता (भाषा-व्याकरण-गणित-कला-विज्ञान) की आवश्यकता होती है या हो भी सकती है परन्तु यथार्थ ज्ञान के बिना साक्षरता राक्षस प्रवृत्ति के लिए भी कारण बन सकती है। जहाँ साक्षरता की अन्तिम सीमा है, वहाँ से ज्ञान प्रारम्भ होता है। लौकिक शिक्षा के सर्वोच्च प्रोफेसर्स, विद्वान्, लेखक, व्याख्याता, वैज्ञानिक को भी आत्मज्ञान के लिए A, B, C से प्रारम्भ करना पड़ता है। शिक्षा माया-मोह-भौतिकता, संसार-प्रपञ्च की होने से इससे सभ्यता का विकास के साथ-साथ विनाश होता है तो ज्ञान सत्य-आत्मा-अमृत-अनन्त होने से इससे सभ्यता-संस्कृति-आध्यात्मिकता-सुख-शान्ति का विकास होता है किन्तु पुनः पतन नहीं होता है। क्योंकि यह विकास भौतिकता तथा भौतिक आकर्षण के परे होता है।

शिक्षा मनुष्य प्रजाति द्वारा आविष्कृत प्रणाली है जिससे मानवीय-सभ्यता का विकास हो। ज्ञान मानव का स्व-प्राकृतिक-शुद्ध स्वरूप है जो कि आनन्दघन-सच्चिदानन्द-सत्यम् शिवम् सुन्दरम् है। शिक्षा भेद-भाव उत्पन्न करती है तो ज्ञान भेद-विज्ञान उत्पन्न करता है। जिससे शिक्षा से अशान्ति होती है तो ज्ञान से विश्वशान्ति होती है। शिक्षा सामान्य है तो ज्ञान असामान्य होता है। शिक्षा

श्रृंखल, उद्दण्ड, स्वार्थी, अधिकारवादी बनाती है जिससे शिक्षित व्यक्ति भ्रष्टाचारी, लड़ाकू, आतङ्कवादी, तानाशाही, युद्ध पिपासु बनता है तो ज्ञानी प्रत्येक जीव को अपने समान मानता है इसलिए ज्ञानी विश्वमैत्री-विश्वशान्ति का भाव-व्यवहार करता है। अतः शिक्षा से व्यक्ति नौकरशाह से तानाशाह बनता है तो ज्ञान से जीव भिक्षु, भिक्षु, ज्ञानवान्-प्रज्ञावान्-भगवान् बनता है।

शिक्षा का विस्मरण भी होता है क्योंकि इसमें बाहर की जानकारी बाहर से दी जाती है किन्तु ज्ञान अविस्मरणीय-अविनाशी है क्योंकि ज्ञान जीव का स्व-शुद्ध-स्वरूप है। शिक्षा संसार से मेल खाती है क्योंकि शिक्षा में सांसारिक विषय होता है ज्ञान संसार से मेल नहीं खाता है। संसार में लिप्त नहीं करता है। जिस प्रकार पानी के कारण मिट्टी पङ्क मल-कीचड़ बन जाती है तथापि वह पङ्क मिट्टीमय ही रहती है किन्तु पङ्क से उत्पन्न होने वाला पङ्कज-कमल मिट्टीमय नहीं होता है। शिक्षा ने शिक्षित/साक्षर/सभ्य व्यक्ति दिये हैं तो ज्ञान ने भगवान् दिया है। □

वैज्ञानिक आध्यात्मिकता से संभव विश्व शांति

सम्मान समारोह, ग्रंथ विमोचन एवं प्रगतिशील वैज्ञानिकों का सम्मेलन

- आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव

परम पूज्य वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव जी की वैश्विक, वैज्ञानिक, प्रगतिशील, प्रकृष्ट समतावादी, विश्व शांतिकर एकतामय भावना को भारत के विश्वविद्यालय से लेकर विदेश के विश्वविद्यालयों एवं विश्वस्तर तक पहुंचाने के लिये आचार्य श्री के दिग्म्बर, श्वेताम्बर, देश विदेश के प्रोफेसर, वैज्ञानिक, इंजीनीयर, उपकुलपति, न्यायविद् शिष्यों को ग्राम रामगढ़ जि. झंगारपुर राज. में दिनांक 18-3-2010 से 22-3-2010 तक आचार्य श्री के सानिध्य में

गहन सूक्ष्म व्यापक चर्चा, विचार-विमर्श योजनाओं के बारे में हुई।

आगन्तुक सम्पूर्ण उपस्थित सुधिजनों (विद्वानों) के साथ-साथ E-Mail, फोन, पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अनुपस्थित देश-विदेश के कार्यकर्ता, सहयोग कर्ताओं के भी निर्णय के अनुसार आचार्य श्री के साहित्य को चालू वेबसाइट (4) एवं कुछ नये वेबसाइट में हिन्दी तथा अंग्रेजी में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार कार्य चालू है एवं आगे और भी तीव्र गति से फैलाया जायेगा। इसके लिये आचार्य श्री के ग्रंथों का अनुवाद अंग्रेजी में पहले से ही चालू है और अभी नये अनुभवी अनुवादकों से अनुवाद कराने का निर्णय किया गया। आचार्य श्री की कुछ मौलिक कृतियों का प्रकाशन-संस्थान द्वारा प्रकाशन करवाने का निर्णय लिया गया। एतदर्थ सभी ने आधुनिक वैज्ञानिक उपकरण का यथा वेबसाइट, इन्टरनेट, E-Mail, मोबाइल, टी.वी., कम्प्यूटर, प्रोजेक्टर आदि का पहले से ही सहयोग ले रहे थे उसे अभी और भी व्यापक रूप से उपयोग करने का निर्णय लिया गया। एतदर्थ सभी पूर्व से ही स्वेच्छा से सहयोग दे रहे हैं और आगे भी सबने करने का (सहयोग देना) कहा। इसमें विदेशियों का भी सहयोग बढ़ता जा रहा है। उपरोक्त व्यक्तियों के साथ-साथ बागड़-मेवाड़ के लोगों की गुरुभक्ति, सदाचार, सद्-व्यवहार सहयोग से आचार्य श्री की लेखनी को और भी ऊर्जा मिल रही है। इसीलिये आचार्य श्री का रामगढ़ में 9 मास का सुखद प्रवास रहा।

इस कार्यक्रम का संचालन प्रो. डॉ. उपकुलपति, आचार्य श्री महाप्रज्ञ के शिष्य श्री सोहन राज तातेड़ ने किया। चीतरी निवासी श्री मणिभद्र जी एवं दीपेश को संस्थान के नये कार्यकर्ता बनाये गये। कछारा जी को ज्ञान विज्ञान दिवाकर, तातेड़ जी को गुरुभक्त संस्थान संरक्षक, ब्र. सोहनलाल जी को सेवा श्री, प्रो.प्रभात कुमार जी एवं प्रो. सुशील कुमार जी को धर्म प्रभाकर, छोटुलाल जी को संस्थान व्यवस्था श्री, मातु श्री विमलाबेन खेतानी व अमेरिका के नरेन्द्र कुमार जी को गुरुभक्त उदार दान श्री आदि अनेकों को उपाधि प्रदान की गई। आचार्य श्री ने सभी को आशीर्वाद और अपनी परम्परा को जीवित रखने को कहा।

- प्रस्तुति संघस्थ मुनि आध्यात्मनंदी

आ. कनकनन्दी को अध्यक्ष्य मानवाधिकार का प्रेषित पत्र

मुनि श्री सुविज्ञसागर जी के चरणों में सादर नमन्।

जैन कर्म सिद्धांत एवं विश्व शान्ति पर विश्व धर्म सभा आस्ट्रेलिया में आचार्य श्री जी के प्रतिनिधि के रूप में डॉ. कछारा का उद्घोषण “सर्वोदय तथा संकीर्ण शिक्षा के स्वरूप एवं परिणाम” तथा आचार्य श्री द्वारा लिखित समाधिमरण (संथारा)-दोनों लघु पुस्तिकाओं की प्राप्ति पर हार्दिक आभार।

विश्व शान्ति - मानवाधिकार निरस्त्रीकरण, मानवजीवन, आत्मकल्याण तथा संथारा जैसे गृह विषय पर इन पुस्तिकाओं में गहनता से प्रकाश डाला गया है।

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ने जीवन के माध्यम से दृढ़ संकल्प, निश्चय, कठिन, परिश्रम, त्याग, तपस्या के द्वारा धर्म, परिवार, समाज को अपूर्व संदेश दिया है।

हालांकि मैं इतना अधिक चिन्तक और धर्मज्ञानी नहीं हूँ, फिर भी जितना व जैसा मैं समझ पाया हूँ सभी धर्मावलम्बी पाठक इनमें लिखित सामग्री से ज्ञानोपार्जन कर सकेंगे।

यह जानकर भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आचार्य श्री के साहित्य पर शोध करने वाले शोधार्थियों को यू. जी. सी. द्वारा आर्थिक अनुदान घोषित किया गया है। आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के शिष्यों, शोध विश्वविद्यालयों, ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणियों, शोधार्थियों एवं प्रो. वैज्ञानिक आदि की सूची के समावेश से पुस्तकों की उपयोगिता और बढ़ गई है।

परम पूज्य आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव, सभी संघस्थ मुनि श्री व आपके चरणों में मेरा पुनः सादर नमन्।

मुनि श्री सुविज्ञसागर जी,

धर्म दर्शन सेवा संस्थान

c/o डॉ. एन. एल. कछारा,

55, रविन्द्र नगर,

उदयपुर - 313001

फोन नं. - 0294-2491422

एन. के. जैन

चेयरपरसन (अध्यक्ष)

मद्रास व कर्नाटक उच्च न्याया

मानवाधिकार आयोग

जयपुर (राज.)

आचार्य श्री कनकनन्दी संसंघ सम्बन्धी संस्था, वेबसाइट आदि

1. धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान, बड़ौत स्थापना - सन् 1989
 2. धर्म दर्शन सेवा संस्थान, उदयपुर स्थापना - सन् 2000
- शाखाएँ -**
1. मुजफ्फरनगर 2. गाजियाबाद 3. कोटा 4. सलूम्बर 5. प्रतापगढ़
 6. मुम्बई 7. अमेरिका 8. सागवाड़ा।

- सहयोगी/सम्बन्धी संस्थाएँ -

1. Jain Philosophy and Science, Udaipur सन् 2007
2. जैन शासन विकास मञ्च, उदयपुर
3. जैन विज्ञान केन्द्र, अहमदाबाद
4. JAINA अमेरिका - इसकी 48 शाखाएँ हैं।
5. PEACE NEXT (120 देशों की संस्था)
6. उदयपुर संभाग के 5 ग्रामों में धर्म-दर्शन-विज्ञान विद्यालय का शुभारंभ

-Website and E-mail-

1. www.jainkanaknandhi.org
2. www.jainworld.com (147 देशों में) (जैन अमेरिका का)
3. E-mail : bhupesh.icpl@yahoo.co.in (peace Next)
4. Idjo.org (श्री नरेन्द्र कुमार जैन, अमेरिका)
5. E-mail : nlkachhara@yahoo.com (चालू)
6. E-mail : info@jainkanaknandhi.org

भारत के 11 प्रदेश के 32 विश्वविद्यालयों में आचार्य श्री के साहित्य कक्ष की स्थापना अतिशय क्षेत्र सीपुर में सन्त निवास व सन्तों की व्यवस्था हेतु योगदान आचार्य श्री कनकनन्दी का आह्वान

विज्ञान आंशिक धर्म है किन्तु धर्म पूर्ण विज्ञान है।

Science is part of religion but religion is absolute science.

विश्व के समस्त जिज्ञासुओं को हमारा सादर आह्वान एवं आमन्त्रण है जो परम सत्य को धार्मिक आस्था, दार्शनिक दृष्टि तथा वैज्ञानिक प्रणाली से परिज्ञान, परिपालन व उपलब्धि करना चाहते हैं। उनके लिए मेरा आह्वान है-

You give me Co-operation, I shall give you scientific religion.

आप मुझे सहयोग दें, मैं आपको वैज्ञानिक धर्म दूँगा।

-वैज्ञानिक धर्मचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव

आध्यात्मिक रहस्य के रहस्य ~ 100

द्वय श्रमण दीक्षा एवं ग्रन्थ विमोचन



श्री कनकनन्दी के साहित्यों का विमोचन करते हुए राष्ट्रसंत गणेशमुनी, इस अवसर पर दि. श्वे. जैन 30-40 साधु-साध्वी 30-35 हजार श्रद्धालु तथा विमोचित ग्रन्थ के द्रव्यदाता तथा संस्थान के कार्यकर्ता श्रीमती लक्ष्मी गुरुचरण जैन आदि उपस्थित थे। (उदयपुर-2006)



मणिभद्र (चीतरी) को गुरुभक्त संस्थान कार्यकर्ता का प्रशस्तिपत्र प्रदान करते हुए आ. कनकनन्दी। (रामगढ़-2010)

डॉ. कच्छारा को विश्वधर्म प्रभाकर अलंकरण



अमेरिका, लंदन, विश्वधर्म सभा (आस्ट्रेलिया) आदि में वैज्ञानिक-आध्यत्मि जैनधर्म के प्रचार करने के उपलक्ष्य में "विश्वधर्म प्रभाकर" उपाधि से अलंकरण करते हुए डॉ. कच्छारा के आध्यात्मिक गुरु आचार्य कनकनन्दी।



भारत के 11 प्रदेशों में 27 विश्वविद्यालयों में शोधकार्य हेतु आचार्य कनकनन्दी साहित्य कक्ष की स्थापना के उपलक्ष्य में प्रो. डॉ. तातेड़ (उपकुलपति) को संस्थान संरक्षक का प्रशस्ति पत्र प्रदान करते हुए आचार्य कनकनन्दी।